दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

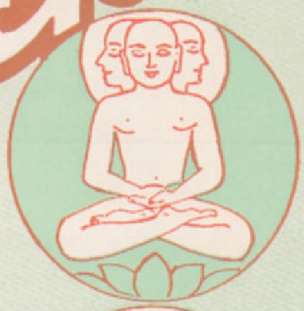

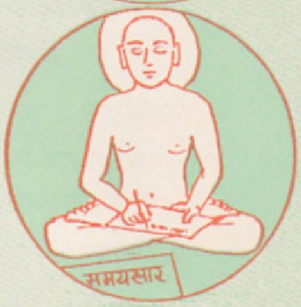

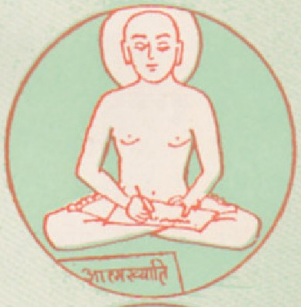

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (गुजरात) का मुखपत्र

*** वे धर्मी धन्य हैं ***

ध्रुवधाम के ध्येय के ध्यान की धधकती धूनी को धैर्य से धोंखने रूप धर्म के धारक धर्मी धन्य हैं। — पू० स्वामीजी

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३३ : अंक २ [३८६] अगस्त, १९७७

आत्मधर्म [३८६]

[शाश्वत सुख का मार्गदर्शक आध्यात्मिक हिन्दी मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

क्या

१ अब मेरे समकित सावन आयो
२ इनकी तो सुनो
३ संपादकीय :
अब हम क्या चर्चा करें ?
४ भेद-विज्ञान की महिमा
[समयसार कलश]
५ कारणनियम और कार्यनियम
[नियमसार प्रवचन]
६ परमभाव और अपरमभाव
[समयसार प्रवचन]
७ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
८ ज्ञान-गोष्ठी
९ समाचार दर्शन
१० पाठकों के पत्र
११ प्रबंध संपादक की कलम से

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ के अध्यक्ष श्री नवनीतभाई चुन्नीलाल जवेरी का दु:खद निधन दिनांक २१ जुलाई, १९७७ की रात्रि को हो गया। उनके शोक-संतप्त परिवार को इस दु:ख को सहन करने की शक्ति एवं संबल मिले व दिवंगत आत्मा को आत्म-शांति प्राप्त हो, ऐसी आंतरिक भावना है।

- आत्मधर्म परिवार

आत्मधर्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३३ [३८६] अंक : २

अब मेरे समकित सावन आयो ॥टेक॥

बीति कुरीति मिथ्यामति ग्रीषम,
पावस सहज सुहायो ॥अब० ॥

अनुभव दामिनि दमकन लागी,
सुरति घटा-घन छायो।

बोलै विमल विवेक पपीहा,
सुमति-सुहागिन भायो ॥अब० ॥

गुरुधुनि गरज सुनत सुख उपजै,
मोर सुमन विहँसायो।

साधक भाव अंकुर उठे बहु,
जित-तित हरष सवायो ॥अब० ॥

भूल-धूल कहि मूल न सूझत,
समरस जल झर लायो।

'भूधर' को निकसै अब बाहिर,
निज निरचू घर पायो ॥अब० ॥

इनकी तो सुनो...

एक किसी बालक को बुखार आ गया। कोई कहने लगा इसे चिरायता दो, कोई कहने लगा कुनैन दो। कोई कहने लगा खाने को एक-दो दिन कुछ न दो। वह बालक सबकी बातें सुनता रहा, पर किसी भी बात पर उसने ध्यान नहीं दिया, उत्साह नहीं दिखाया। पर जब एक आदमी ने कहा कि इसे खाने को सीरा (हलवा) दो तब वह माँ से कहने लगा - माँ इनकी तो सुनो, ये क्या कह रहे हैं ? माँ समझ गयी कि इसे हलवा खाने की इच्छा है और वह अच्छी तरह जानती थी कि इस अवस्था में हलवा खाने को देना खतरे से खाली नहीं है। अत: किंचित् क्रोधित होती हुई बोली कि वे तेरी मौत कह रहे हैं। बोल अब तुझे क्या कहना है ?

इसीप्रकार रागज्वर से पीड़ित व्यक्ति को जब सद्गुरुदेव वीतरागता की बात करते हैं तब तो वह उत्साहित नहीं होता, किंतु जब कोई राग में धर्म बताये तो अत्यंत रुचिपूर्वक कहता है, इनकी तो सुनो ये क्या कहते हैं ? तब अत्यंत करुणार्द्र होकर सद्गुरु कहते हैं कि वे तेरी मौत (भावमरण) की बात कहते हैं। अज्ञानी रागी को राग की पोषक बात रुचिकर लगती है, पर जैसे ज्वर मीठी से नहीं - कड़वी औषधि से जाता है; उसीप्रकार मिथ्यात्व का महारोग रागपोषण से नहीं, वीतरागी मार्ग से जायेगा।

- पूज्य स्वामीजी

सम्पादकीय

अब हम क्या चर्चा करें ?

एक और इंटरव्यू : कानजी स्वामी से

'स्वामीजी किसी से कोई चर्चा नहीं करते, वे किसी की बात भी नहीं सुनते, अपनी ही कहे जाते हैं।' इसप्रकार की चर्चा आज बुद्धिपूर्वक जोरों से चलायी जा रही है।

उक्त संदर्भ में स्वामीजी के विचार समाज तक पहुँचें, इस पवित्र उद्देश्य से संपादक आत्मधर्म द्वारा दिनांक २७-६-७७ को सोनगढ़ में स्वामीजी से लिया गया इंटरव्यू आत्मधर्म के जिज्ञासु पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है।

'अब हम क्या चर्चा करें ?' उक्त शब्द पूज्य कानजीस्वामी ने तब कहे जब उनसे कहा गया कि आपसे कुछ लोग चर्चा करना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि आप जो प्रतिपादन करते हैं, उसके संबंध में उभयपक्षीय चर्चा करके सत्यासत्य का निर्णय किया जाये।

अपनी बात को स्पष्ट करते हुए स्वामीजी बोले – 'भाई! अब हम किसी से क्या चर्चा करें ? हमने तो कभी किसी से वाद-विवाद किया ही नहीं। २२ वर्ष की उम्र में घर छोड़ा था, आज ६६ वर्ष होने को आये। २३ वर्ष स्थानकवासी संप्रदाय में रहे, ४३ वर्ष दिगंबर धर्म स्वीकार किये हो गये। आज तक किसी से विवाद किया नहीं। अब.....

बीच में ही टोकते हुए जब मैंने कहा – 'इसमें क्या है ? यदि अब तक नहीं किया तो न सही, पर यदि चर्चा करने से तत्त्व का सही निर्णय हो जावे तो चर्चा करने में क्या हर्ज है ?'

तब अत्यंत गंभीरता से बोले – "तत्त्वनिर्णय वाद-विवाद से नहीं होता। तत्त्व-निर्णय दिगंबर जिनवाणी के अध्ययन, मनन, चिंतन एवं आत्मा के अनुभव से होता है। कविवर पंडित बनारसीदासजी ने कहा है न :-

सदगुरु कहें सहज का धंधा, वाद-विवाद करे सो अंधा।[१]

खोजी जीवे वादी मरे, ऐसी सांची कहवत है।

नियमसार परमागम में आचार्य कुन्दकुन्द भी कहते हैं :-

णाणाजीवा णाणाकम्मं णाणाविहं हवे लद्धी।

तम्हा वयणविवादं सगपरसमएहिं वज्जिज्जो॥१५६॥

जगत में नाना प्रकार के जीव हैं। उनकी नाना प्रकार की लब्धियाँ हैं और उनके नाना प्रकार के कर्म हैं। इसलिये चाहे वह स्वमत का हो या परमत का, किसी के साथ भी वचन-विवचाद नहीं करना चाहिये।

वाद-विवाद से पार पड़नेवाली नहीं है। यह तो हम पहिले से ही जानते थे। अत: हम तो सदा इससे दूर ही रहे, वाद-विवाद में कभी पड़े ही नहीं।''

जब वे रुके तो मैंने तत्काल कहा - 'प्रश्न, वाद-विवाद का नहीं, चर्चा करने का है। वाद-विवाद में मत पड़िये। कौन कहता है कि आप वाद-विवाद में पड़िये ? पर आप तत्त्व-चर्चा से क्यों इंकार करते हैं ?'

'चर्चा तो यहाँ प्रतिदिन होती है, शाम को ४५ मिनिट। पर जिस तरह की चर्चा की लोग बात करते हैं, वह तत्त्व-चर्चा नहीं, वह वीतराग चर्चा नहीं। वह तो वाद-विवाद ही है। वे लोग बात तो चर्चा की करते हैं और करना चाहते हैं वाद-विवाद।'

वे कह ही रहे थे कि मैंने कहा - 'आप वीतराग चर्चा ही करिये, तत्त्व-चर्चा ही करिये, पर इंकार तो न करिये।'

'भाई! इस चर्चा के लिये हमने कब इंकार किया। देखो तुमसे कर ही रहे हैं, इंकार कहाँ कर रहे हैं ? तात्त्विकचर्चा तो यहाँ बहुत होती है। आत्मधर्म में ज्ञान-गोष्ठी में छपती भी रहती है।'

'हमसे तो करते हैं पर.....'

'तुम से ही क्यों हम तो सबसे करते हैं। सहजभाव से जो आता है, समझने की दृष्टि से जो पूछता है, उसे हम जो कुछ जानते हैं, बताते ही हैं, मना कब करते हैं ?'

१- बनारसी विलास, पृष्ठ २०३

'लोग तो यही कहते हैं कि आप तो किसी से बात ही नहीं करते। अखबारों में भी यही छप रहा है।'

'भाई! लोगों की हम क्या कहें? और छापनेवालों की छापनेवाले जानें।'

'लोगों की यह भी शिकायत है कि – आप अपनी ही कहे जाते हैं, दूसरों की सुनते ही नहीं हैं।'

'तुम्हारी सुन रहे हैं न?'

'मेरी बात नहीं, और लोगों के विचार भी तो सुनना चाहिये। विचारों का आदान-प्रदान तो होना चाहिये।'

जब मैंने यह कहा तब वे कहने लगे – 'सुनो भाई! वे जो कुछ कहना चाहते हैं, वह सब अखबारों में लिखते ही हैं, उसे हम जानते ही हैं; और हम जो कहते हैं वह भी बहुत कुछ छप चुका है, वे भी उसे पढ़ते ही होंगे। विचारों का आदान-प्रदान तो इस तरह हो ही जाता है।

विचारों का आदान-प्रदान न हो तो चर्चा की बात ही क्यों उठती?'

निराश-सा होकर जब मैंने अंतिम प्रयास करते हुए कहा – 'यदि एक बार चर्चा हो जाती तो शायद कुछ न कुछ रास्ता निकल आता और.....'

तब वे कहने लगे – 'रास्ता निकलता कहाँ है? तुम्हारे जयपुर (खानियां) में सैकड़ों विद्वानों के बीच लिखित चर्चा हो चुकी है और वह छप भी चुकी है, उससे भी कुछ पार नहीं पड़ी तो अब क्या पार पड़ेगी?

ऐसी चर्चा से कुछ पार पड़नेवाली नहीं है, यह जगत तो ऐसे ही चलता रहेगा। मनुष्य भव एवं परम सत्य दिगंबर धर्म पाया है, तो आत्मानुभव प्राप्त कर इसे सार्थक कर लेना चाहिये। जगत के प्रपंचों में उलझने से कोई लाभ नहीं है।'

'आपका तो ठीक पर.....'

'हमारी ही क्या? सबके लिये यही बात है। आयु का क्या भरोसा? हमारा तो यह कहना है कि तुम भी क्यों इन बातों में उलझते हो? समय रहते अपना हित कर लेने में ही लाभ है।'

'यह तो ठीक किंतु.....'

'किंतु-विंतु कुछ नहीं। यही ठीक है। एक आत्मा ही सार है, वह ही परम शरण है।'

कहते-कहते जब वे अंतर्मग्न-से हो गये तब मैंने उनका ध्यान भंग करते हुए कहा कि - 'कुछ लोग ऐसा भी तो कहते हैं कि खानियां चर्चा में कुछ बदल दिया गया है।'

तब कहने लगे - 'लिखित चर्चा हुई। प्रत्येक की तीन-तीन प्रतियाँ बनीं। दोनों पक्षों के पास एक-एक प्रति एवं एक प्रति मध्यस्थ के पास रही। तीनों प्रतियों पर दोनों पक्षों के एवं मध्यस्थ विद्वानों के हस्ताक्षर हुए, हस्ताक्षरों सहित पुस्तकें छपीं। फिर भी वे ऐसा कहते हैं कि बदल दिया तो हम क्या करें ?

इससे अधिक और क्या किया जा सकता था ? अब भी यदि कोई चर्चा हो तो उसके बारे में भी यदि ऐसा ही कहेंगे तो क्या किया जा सकेगा ?

अत: इन बातों में पड़ना बहुमूल्य समय खराब करना है।'

'यदि आप चर्चा नहीं करेंगे तो वे लोग आपको गैर दिगंबर घोषित कर देंगे।' जब मैंने यह कहा तब वे अत्यंत गंभीर हो गये। कुछ देर तक मौन रहे फिर कहने लगे - 'भाई! क्या उनके घोषित करने से हम गैर दिगंबर हो जायेंगे ? उन्होंने हमें दिगंबर भी कब घोषित किया है ? क्या हम उनके दिगंबर घोषित करने से दिगंबर हुए हैं ?

हमने तो दिगंबर धर्म को 'सत्य पंथ निर्ग्रंथ दिगंबर' जानकर-मानकर अंगीकार किया है। धर्म तो श्रद्धा की वस्तु है, उसे किसी के सील-सिक्के की आवश्यकता नहीं है।

हमें न तो किसी ने दिगंबर बनाया है, और न कोई हमें गैर दिगंबर ही बना सकता है। हम तो अपनी श्रद्धा से दिगंबर बने हैं और अपनी श्रद्धा से ही बने रहेंगे।'

जब मैंने कहा कि - 'यह तो सही है कि वे कौन होते हैं किसी को दिगंबर या गैर दिगंबर घोषित करनेवाले और उनकी घोषणा से होता भी क्या है ? फिर भी समाज में शांति तो रहनी ही चाहिये। शांति के लिये कुछ न कुछ उपाय तो करना ही चाहिये।'

'क्यों नहीं करना चाहिये, अवश्य करना चाहिये। पर शांति का उपाय तो एक मात्र आत्मा का आश्रय करना है। भगवान तो यही कहते हैं। यदि भगवान के बताये मार्ग पर चलना है तो यही एक मार्ग है और तो सब बातें हैं।'

'यह तो बिल्कुल ठीक है कि शांति का उपाय एकमात्र आत्मा का आश्रय करना है। पर यदि चर्चा के माध्यम से आपकी बात – आत्मा की बात उन लोगों के समझ में भी आ जाये जो लोग आपका विरोध करते हैं तो उन लोगों का भी हित हो सकता है तथा सामाजिक वातावरण भी ठीक हो सकता है। आप ही तो कहते हैं कि भाई! आत्मा तो सभी समान हैं, भूल मात्र पर्याय में है और पर्याय एकसमय की है।'

जब मैंने यह कहा तब समझाते हुए बोले – 'यह आत्मा की बात अत्यंत सूक्ष्म है। जो लड़ने या समझाने के मूड में आयेगा उसकी समझ में आनी संभव नहीं। जो समझने के लिये आवे, महीनों शांति से सुने, अभ्यास करे, तो समझ में आ सकती है। माथे पर सवार होकर आनेवाले के समझ में आवे–ऐसी बात नहीं है। अत्यंत गंभीर और सूक्ष्म बात है न। बाहर–बाहर की बातों से समझ में आनेवाली नहीं।

हमें तो किसी से कोई चर्चा करनी नहीं है, हम तो कहीं चर्चा के लिये जाते नहीं।'

'आप मत जाइये। चर्चा करनेवालों को यहाँ बुला लीजिये।'

'न हम कहीं जाते हैं, न किसी को बुलाते हैं। जिसे समझना हो आवे, शांति से सुने तो किसी को मना भी नहीं करते। लाभ लेनेवालों को शिविर की सूचना आत्मधर्म में निकलती ही है। जिसे आना होता है आता ही है। सूचना मात्र से ही हजारों जिज्ञासु आते हैं और लाभ लेते हैं।'

'यह सब तो ठीक पर एक बार.....'

'एक बार क्या हम तो बार–बार कहते हैं कि यह मनुष्य भव और दिगंबर धर्म बार–बार मिलनेवाला नहीं। जिसे आत्मा का हित करना हो उसे जगत के सब प्रपंचों से दूर रहकर आत्मानुभव प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। यही एकमात्र करनेयोग्य कार्य है। शांति भी इसी में है।'

ऐसा कहकर जब वे स्वाध्याय करने लगे तब मैं भी सविनय प्रणाम कर चल दिया।

भेद-विज्ञान की महिमा

परमपूज्य श्री अमृतचंद्राचार्य के समयसार कलश नं० १३१ पर हुए पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। कलश इसप्रकार है —

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥१३१॥

जो कोई सिद्ध हुए हैं, वे भेद-विज्ञान से सिद्ध हुए हैं; और जो कोई बँधे हैं, वे उसी के अभाव से बँधे हैं।

भेद-विज्ञान से शुद्ध आत्म-तत्त्व की उपलब्धि होती है। राग से भिन्न शुद्ध आत्मा भेद-विज्ञान द्वारा प्राप्त होता है; किंतु व्यवहार रत्नत्रय से उसकी प्राप्ति नहीं होती, इसलिये भेद-विज्ञान की भावना अत्यंत भाने योग्य है। यही करने योग्य है और इसके द्वारा आत्मा का आस्वादन करने योग्य है। संसार के भोग-विलास में तो राग का स्वाद आता है, फिर भी पर-पदार्थ का आस्वाद तो किसी जीव को हो ही नहीं सकता। भेद-विज्ञान द्वारा आत्मा के आनंद का स्वाद लेना - बस! यही करने योग्य है।

यह भेद-विज्ञान की धारा ज्ञानी के अखंड-सतत रहा ही करती है। राग होने पर भी, भेद-विज्ञान की धारा अंतर में निरंतर चालू ही है। जब तक ज्ञान, ज्ञान में सर्वथा स्थिर न हो जाये - ठहर न जाये तब तक भेद-विज्ञान निरंतर भाने योग्य है।

ज्ञान की ज्ञान में स्थिरता दो प्रकार से है। एक तो मिथ्यात्व का अभाव होकर ज्ञान का ज्ञान में ठहरना तथा दूसरा राग का सर्वथा अभाव होकर ज्ञान का ज्ञान में ठहरना। यह दोनों प्रकार की स्थिरतायें जब तक पूर्ण न हों तब तक भेद-ज्ञान की भावना निरंतर धाराप्रवाहरूप से भाना योग्य है।

आज तक जितने भी सिद्ध हुए हैं वे सब इसी भेद-विज्ञान के प्रताप से ही सिद्ध हुए हैं, वर्तमान में जो हो रहे हैं और भविष्य में भी जितने जीव मुक्त होंगे वे सभी भेद-विज्ञान के प्रताप से ही होंगे। यहाँ व्यवहार रत्नत्रय से सिद्ध होते हैं, ऐसा नहीं कहा; अपितु यह कहा कि

व्यवहार रत्नत्रय का जो शुभराग है, उससे भी भेद-विज्ञान करके सिद्धदशा प्राप्त होती है। जिससे भेद करना है, उससे सिद्धपद कैसे मिल सकता है ? अतः रागरहित भेद-विज्ञान से ही मुक्ति होती है।

एक स्त्री की अंधेरे में सुई खो गयी और वह स्त्री किसी अन्य के कहने से उसे उजाले में ढूँढ़ने लगी। किंतु उजाले में कहाँ से मिलती ? खोई तो अंधेरे में थी। उसी भाँति राग की एकता में आत्मा अनादि से खो गया है, उसे यदि राग से भिन्न होकर देखे तो ही भेद-विज्ञान द्वारा हाथ में आ सकता है।

जीव को बंधन कैसे होता है और मुक्ति कैसे हो ? यह बात यहाँ बहुत संक्षेप में कह दी है। जो कोई जीव बँधे हैं, वे सभी इस भेद-विज्ञान के अभाव से ही बँधे हैं। कर्म के उदय से जीव बँधे हैं, ऐसा यहाँ नहीं कहा। जीव की हीन दशा होती है, वह स्वयं अपने द्वारा ही की गयी है, कर्मों ने हीन दशा नहीं की है। शास्त्र में जो कर्म के द्वारा होने की बात लिखी है, वह तो मात्र निमित्त का कथन है।

अहो ! गजब की बात की है। किंतु इस जीव को संसार की अशुभ प्रवृत्ति से निवृत्ति मिलती नहीं। इससे कदाचित् निवृत्ति मिले तो शुभभाव में आवे। परंतु 'शुभभाव से भी मैं भिन्न हूँ' यह बात सुनने को मिलना भी बहुत दुर्लभ है।

निगोद के जीव भी भेद-विज्ञान के अभाव से ही बँधे हैं, कर्म के जोर से नहीं बँधे हैं। भाव-कलंक की प्रचुरता के कारण ही निगोद के जीव बँधे हैं - नित्यनिगोद के जीव भी भेद-विज्ञान के अभाव के कारण ही बँधे हैं। कर्मोदय के कारण जीव बंधन को प्राप्त होते हैं, यह बात ही उड़ जाती है। बंध का कारण तो मात्र राग में एकताबुद्धि ही है। इस एक श्लोक में बहुत कुछ रहस्य भरा है।

बात तो केवल इतनी सी है कि आस्रव भाव में एकत्वबुद्धि से जीव बंधन को प्राप्त होता है और आस्रव भाव में भेद-बुद्धि से जीव मुक्त होता है। अनादि से जीव को भेद-ज्ञान नहीं है। आस्रव का यथार्थ ज्ञान भी उसको कहा जाये कि जो ज्ञान आस्रव से भिन्न पड़ गया हो, भिन्न पड़ने पर ही आस्रव का सच्चा ज्ञान होता है। आस्रव मेरे में नहीं है, ऐसा नास्ति का ज्ञान भी अस्तित्वरूप के ज्ञान बिना नहीं होता।

अनादि काल से भेद-ज्ञान नहीं हुआ इसलिये जीव बँधा हुआ है ऐसा यहाँ कहा; किंतु अनादिकाल से व्यवहार नहीं किया इसलिये जीव बंधन में है ऐसा यहाँ नहीं कहा। दया-दान-व्रत-तपादि के शुभभाव हों; किंतु उन शुभभावों से भी मैं भिन्न हूँ ऐसा भेद-ज्ञान करे तो उस भेद-ज्ञान से जीव मुक्त होता है। जिसने राग से भिन्न होने का पुरुषार्थ किया और स्व के आश्रय में गया वह जीव कर्म से छूटता ही है। यहाँ मोक्ष का प्रथम कारण भेद-विज्ञान है ऐसा कहा, परंतु प्रथम व्यवहार और पश्चात् भेद-ज्ञान हो ऐसा नहीं कहा। भेद-विज्ञान अर्थात् स्व का आश्रय और वही मुक्ति का कारण है। प्रथम तो राग से भेद-ज्ञान करना - वह प्रथम दर्शनबुद्धि है। पश्चात् राग छोड़कर स्वरूप में स्थिरता करना - वह चारित्र का पुरुषार्थ है। राग से भिन्न होने का अभ्यास करके भेद-विज्ञान प्रकट करना ही धर्म का प्रथम सोपान है।

नियमसार प्रवचन

कारणनियम और कार्यनियम

परमपूज्य दिगंबर आचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम 'नियमसार' की तृतीय गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार गतांक से आगे यहाँ दिया जा रहा है।

प्रथम कारणनियम जो त्रिकाली है, उसकी पहिचान करायी और उसके आश्रय से प्रकट होनेवाले कार्यनियम का वर्णन अब करते हैं।

कार्यनियम का अर्थ है निश्चय से जो करने के योग्य हो, प्रयोजनस्वरूप हो अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही कार्यनियम है। यह तीनों कार्यनियम एक साथ प्रकट नहीं होते, किंतु इनमें क्रम पड़ता है अर्थात् इनके वर्णन में भी भेद से जुदा-जुदा वर्णन किया है।

जो कारणनियमरूप स्वभावरत्नत्रय है, वह तो त्रिकाल एक साथ ही है। यह तेरी

त्रिकाली ऋद्धि वर्तमान में भी तेरे पास पड़ी है, किंतु मुझे अपनी शक्ति का भरोसा नहीं है, अत: बाहर के कारणों की शोध करता है।

आत्मा में कार्य मोक्ष का कारण मोक्षमार्ग है। वह मोक्षमार्ग कार्यनियम है और उसका कारण ध्रुवस्वभाव है, वह कारणनियम है। उसमें कार्यनियम है सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अर्थात् रत्नत्रय। इन तीनों के स्वरूप का वर्णन करते हैं।

(१) अब यहाँ सबसे पहिले सम्यग्ज्ञान का स्वरूप बताते हैं - परद्रव्य का अवलंबन लिये बिना नि:शेषपने अंतर्मुख योगशक्ति में से उपादेय (उपयोग को संपूर्णतया अंतर्मुख करके ग्रहण करनेयोग्य) ऐसा जो निजपरमतत्त्व का परिज्ञान - वह सम्यग्ज्ञान है।

शरीर-मन-वाणी अथवा देव-गुरु-शास्त्र इत्यादि किसी भी परद्रव्य का अवलंबन लिये बिना अंतर्मुख जो निजपरमात्मतत्त्व का ज्ञान है, वही सम्यग्ज्ञान है। पर-सन्मुख भाव टालकर नि:शेषरूप से चैतन्य भगवान आत्मा में ही अंतर्मुख होकर उपादेयरूप जो अपना परम आत्मतत्त्व उसका जानना, वह सम्यग्ज्ञान है। रागादि के अवलंबन से सम्यग्ज्ञान नहीं होता। परलक्षी ज्ञान मोक्ष का कारण नहीं है। मोक्ष का कारण तो अंतर्मुख उपयोग से सीधा आत्मा का ज्ञान करना है। किसी भी पर का अवलंबन लेकर जो ज्ञान हो वह तो पर का जानपना है। पर के अवलंबन से निरपेक्ष आत्मतत्त्व का ज्ञान नहीं होता।

शास्त्र के अवलंबन से होनेवाला ज्ञान मोक्षमार्ग नहीं है, किंतु जिसमें किसी भी परद्रव्य का अवलंबन नहीं ऐसे अंतर्मुख निजात्मतत्त्व का ज्ञान ही मोक्षमार्ग है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है ऐसा तो सभी कहते हैं, परंतु उनका स्वरूप क्या है वह यहाँ बताया जा रहा है।

चैतन्य के आश्रय से ही मेरा ज्ञान होता है किंतु पर के अवलंबन से मेरा ज्ञान नहीं होता, ऐसा जानकर, उपादेयरूप निज परमात्मस्वभाव में उपयोग लगाकर जो जानना हो उसका नाम सम्यग्ज्ञानरूपीनियम है। जहाँ ध्रुवस्वभाव में उपयोग लगाया वहाँ निजपरमात्मतत्त्व ही उपादेय हुआ, ऐसे उपादेयरूप निजपरमात्मतत्त्व का परिज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है। बाह्य में दूसरे परमात्मा का ज्ञान करना तो शुभराग में जाता है। अंतर में स्वसन्मुख उपयोग करके निज ध्रुव परमात्मतत्त्व का ज्ञान होना ही सम्यग्ज्ञान है और वह नियम से मोक्षमार्ग है। अकेला ध्रुव चैतन्यस्वभाव है, उसमें उपयोग को लगाकर जो आत्मा का ज्ञान हुआ वही सम्यग्ज्ञान है।

सम्यग्ज्ञान में उपादेयता तो निजपरमशुद्धआत्मा की ही है। ज्ञान अन्दर में झुका, तब उसमें अकेला परमात्मद्रव्य ही उपादेय रहा; निमित्त, विकल्प या व्यवहार उपादेय नहीं रहा। शास्त्र ऐसे ही आत्मस्वभाव को उपादेय बताते हैं। ऐसे आत्मा को अंतर्मुख होकर जाने तभी शास्त्र-पठन सच्चा कहा जाये, किंतु यदि निजपरमात्मतत्त्व के अतिरिक्त किसी राग को, निमित्त को, अथवा व्यवहार को उपादेय मानकर अटक जाये तो उसका शास्त्र-पठन भी सच्चा नहीं है। अंतर्मुख उपयोग करके निरपेक्ष निरावलंबी परम चैतन्यतत्त्व को जाने तभी सम्यग्ज्ञान हो और उसके शास्त्रज्ञान को व्यवहारज्ञान कहा जाये। ऐसे निजपरमात्मतत्त्व का अंतर्मुख सम्यग्ज्ञान ही मोक्षमार्ग है। यहाँ नियमरूप मोक्षमार्ग बताना है, इसलिये व्यवहार की बात नहीं ली गयी है, क्योंकि व्यवहार वास्तव में मोक्षमार्ग है नहीं।

(२) अब सम्यग्दर्शन का स्वरूप कहते हैं - भगवान परमात्मा के सुख के अभिलाषी जीव को शुद्ध अन्तःतत्त्व के विलास का जन्म-भूमि स्थान जो निज शुद्धजीवास्तिकाय उससे उत्पन्न जो परम श्रद्धान वह ही दर्शन है।

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा भी व्यवहार श्रद्धा है, तो फिर कुदेव-कुगुरु को माने उसकी तो बात ही कहाँ रही? जैसे सम्यग्ज्ञान में मात्र निजपरमात्मा का अवलंबन है, वैसे ही सम्यग्दर्शन में भी अकेले आत्मा का ही अवलंबन है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र यह तीनों परम निरपेक्ष हैं, यह बात पहले बहुत स्पष्ट हो चुकी है। सम्यग्दर्शन शुद्ध जीवास्तिकाय के ही आश्रय से उत्पन्न होता है। सम्यग्दर्शन किसको होता है? जो जीव भगवान परमात्मा के सुख के अभिलाषी हैं अर्थात् जिन्हें चतुर्गति की अभिलाषा नहीं है; स्वर्ग में इंद्रपद के सुख की अभिलाषा नहीं है अर्थात् स्वर्ग में अपना सुख है ही नहीं, सुख तो अपने परमात्म स्वभाव में ही है, मेरे चैतन्य के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ में मेरा सुख नहीं है; इसप्रकार जिसको अपने भगवान परमात्मा के सुख की अभिलाषा है - ऐसे जीव को शुद्ध अंतस्तत्त्व के विलास का जन्मस्थान निज शुद्ध जीवास्तिकाय है, उसी की श्रद्धा से सम्यग्दर्शन होता है।

अंतर में मेरा आत्मा सहजानंद मूर्ति है, वही मेरे सुखोत्पत्ति की जन्मभूमि है। चैतन्य के सुख और आनंद की अनुभवभूमि कौन? अपना शुद्ध जीवतत्त्व ही आनंदोत्पत्ति का स्थान है। मेरा आनंद कहीं विषयों में, निमित्तों में, अथवा राग में नहीं है, देवपद में भी नहीं - वह तो शुद्ध

चैतन्यतत्त्व में ही है और वही मेरे आनंद का जन्मस्थान है। ऐसे जीवास्तिकाय का परम श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है और वही नियम है। मोक्षाभिलाषी जीवों को ऐसे शुद्ध जीव का परम श्रद्धान नियम से कर्तव्य है। अत: वह सम्यग्दर्शन नियम है।

ऐसे सम्यग्दर्शन अकेले चैतन्यकन्द सहजानंद की मूर्ति निरपेक्ष आत्मा के ही आश्रय से उत्पन्न होता है। किसी व्यवहार के, निमित्त के, अथवा राग के अवलंबन से वह सम्यग्दर्शन उत्पन्न नहीं होता। यहाँ तो अपने आत्मा को ही भगवान परमात्मा कहा है। ऐसे भगवान परमात्मा के आश्रय से होनेवाली परम प्रतीति ही सम्यग्दर्शन है। ऐसे सम्यग्दर्शन होने के बाद ही चारित्र और मुनिदशा होती है, इसके बिना मोक्षमार्ग होता नहीं।

सम्यग्ज्ञान भी अकेले अंतस्तत्त्व के आश्रय से है और सम्यग्दर्शन भी अकेले शुद्ध जीवतत्त्व के आश्रय से ही उत्पन्न होता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को कहीं कुछ भी पर का अवलंबन है ही नहीं - रत्नत्रय तो पर से परम निरपेक्ष है, उसे तो अकेले चैतन्य का ही अवलंबन है। ऐसा रत्नत्रय ही नियम है।

शुद्ध अंतस्तत्त्व का विलास कहाँ से प्रकट होता है? निज शुद्धजीवतत्त्व ही शुद्धअन्तस्तत्त्व के आनंद की जन्मभूमि है। सम्यग्दर्शनरूपी प्रजा की उत्पत्ति अंतर में शुद्ध चैतन्यतत्त्व से होती है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहीं बाहर से उत्पन्न नहीं होता, वह तो अंतर-स्थित भगवान परमात्मा शुद्धजीवतत्त्व के आश्रय से ही प्रकट होता है। ऐसे निज परमतत्त्व का श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है।

(३) अब सम्यक्चारित्र का स्वरूप कहते हैं - निश्चय ज्ञानदर्शनात्मक कारणपरमात्मा में अविचल स्थिति (निश्चलरूप से लीन रहना) ही चारित्र है।

त्रिकाल चैतन्यज्ञायक ज्योति वह कारणपरमात्मा है। जैसा ध्रुवआत्मा त्रिकाल है, वैसा ही उसका दर्शन-ज्ञान भी ध्रुवत्रिकाल है। ऐसे निजकारणपरमात्मा में श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक अविचल स्थिति ही चारित्र है। शरीर की क्रिया अथवा पंच महाव्रत के विकल्प में चारित्र नहीं है, उसमें जो धर्म माने उसके तो सम्यग्दर्शन भी नहीं है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक निजकारणपरमात्मा में निरंतर लीनता होने का नाम चारित्र है। वहाँ बाह्य में नग्न दिगंबरदशा होती है, किंतु यहाँ तो अंतरंग के निश्चयचारित्र की बात है।

चारित्र तो अंतर की लीनता में है। ऐसी अंतर्लीनता बिना, पंच महाव्रत का पालन करे और उसे चारित्र माने तो वह मिथ्यादृष्टि है। मोक्षमार्ग का चारित्र तो ध्रुव कारणपरमात्मा में लीनता करना ही है। निश्चय सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र को 'नियमसार' कहकर व्यवहार ज्ञान-दर्शन-चारित्र का अभाव बताया है। वह हो भले ही, किंतु मोक्षमार्ग तो ऐसा निश्चय ज्ञान-दर्शन-चारित्र ही है, व्यवहार रत्नत्रय मोक्षमार्ग नहीं है। सम्यग्दर्शनसहित भी जो पंच महाव्रतादि व्यवहार चारित्र है, वह सच्चा मोक्षमार्ग नहीं है। अंतर में लीनतारूप निश्चयचारित्र ही सम्यक्चारित्र है और वही नियम है।

इसप्रकार अंतर में निजपरमात्मद्रव्य के आश्रय से जो ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वरूप नियम है, वही निर्वाण का कारण है। निर्वाण अर्थात् सादि-अनंत काल तक स्वरूप में स्थित बना रहना। वह भी चैतन्यस्वरूप के ही आश्रय से है। व्यवहार तो स्वयं अस्थिरता है, उससे स्वरूप में स्थितिरूप निर्वाण प्राप्त नहीं हो सकता।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों नियमरूप कार्य हैं और वे अंतर में कारणपरमात्मा के ही आश्रय से होते हैं। उस रत्नत्रय का यह वर्णन किया।

नियम अर्थात् रत्नत्रय, उसकी शुद्धता बताने के लिये उसमें 'सार' शब्द जोड़ा गया है। यहाँ निश्चय रत्नत्रय से विपरीत, व्यवहार रत्नत्रय के परिहारार्थ 'नियम' शब्द के साथ 'सार' शब्द लगाया गया है। अत: निर्विकल्प रत्नत्रय ही 'नियमसार' है और वही निर्वाण का कारण है।

देखो! आत्मानंद में झूलनेवाले वनवासी संत ने यह टीका की है। स्वयं मुनि हैं, धर्म के स्तंभ हैं। अंदर में विकल्पोत्पत्ति हुई है, फलस्वरूप इस टीका की रचना हो गयी। फिर भी उस विकल्प का आदर नहीं है, आदर तो शुद्ध स्वभाव का ही है और उसी के आश्रय से शुद्धता वृद्धिगत होती जाती है। ऐसी दशा में छठे-सातवें गुणस्थान में झूलते-झूलते ऐसी अलौकिक टीका की रचना हो गयी है।

इस तीसरी गाथा में 'नियमसार' की व्याख्या की। अब इसकी टीका पूर्ण करते हुए श्लोक कहते हैं:-

इति विपरीतविमुक्तं रत्नत्रयमनुत्तमं प्रपद्याहम्।
अपुनर्भवभामिन्यां समुद्भवमनंगशं यामि॥१०॥

इसप्रकार मैं विपरीतरहित (विकल्परहित) अनुत्तम रत्नत्रय का आश्रय करके मुक्तिरूपी रमणी से उत्पन्न अनंग (अशरीरी, अतीन्द्रिय, आत्मिक) सुख को प्राप्त करता हूँ।

स्वभाव के अवलंबन से निरपेक्ष मोक्षमार्ग सिद्ध किया; उसके ऊपर टीकाकार ने कलश चढ़ाया है।

अनंग सुख अर्थात् अतीन्द्रिय सुख; आत्मा के स्वभाव से उत्पन्न होनेवाला सुख अनंग सुख है। अंग का अर्थ है शरीर, उससे पार आत्मा के अनुभव का सुख वह अनंग सुख है। ऐसे सुख को मैं प्राप्त करता हूँ। किसप्रकार? कि परम शुद्ध उत्तम रत्नत्रय का आश्रय करके मुक्तिरूपी स्त्री से उद्भवित सुख को प्राप्त करता हूँ। अभी मुक्ति हुई नहीं है, परंतु अंतर में अनुभव के बल से मुक्ति-सुख को वर्तमान में ही प्राप्त करता हूँ। मुक्ति होगी और मुक्ति का सुख मिलेगा - ऐसी बात नहीं की, किंतु द्रव्य के आश्रय से पर्याय उसमें अभेद होने पर हमारी वर्तमान में ही मुक्ति है। जहाँ भेद को देखते नहीं, अभेद में ही लीन हुए वहाँ वर्तमान में ही मुक्ति है। इसलिये कहा है कि मैं मुक्ति के सुख को प्राप्त करता हूँ। इसी समय मुनिदशा में मुक्ति जैसा आनंद अनुभव करता हूँ। मुक्ति का आधार तो भगवान आत्मा है, वह संपूर्ण वर्तमान वर्त रहा है, उसी के आश्रय से मैं वर्तमान में मुक्ति के सुख को प्राप्त करता हूँ।

कोई कहे कि पंचम काल में यह टीका लिखी गयी है और इस पंचम काल में तो किसी को मुक्ति होती ही नहीं। तो उससे कहते हैं कि जहाँ पर्याय अंतर में झुककर अभेद हुई वहाँ पूरे स्वभाव के आश्रय की लीनता से तृप्ति है, ध्रुवस्वभाव के आश्रय से पर्याय कृतकृत्य होकर वर्त रही है; इसलिये अधूरी पर्याय अथवा पूर्ण पर्याय ऐसे पर्याय-भेद को मैं देखता ही नहीं। मैं तो द्रव्य में लीन होने से वर्तमान में ही मुक्ति-सुख का अनुभव करता हूँ। अपूर्ण अथवा पूर्ण ऐसे पर्याय के भेद के ऊपर जोर नहीं है, किंतु अभेद स्वभाव वर्तमान में ही परिपूर्ण है, उसी के ऊपर जोर है और उसमें एकाग्रता से वर्तमान में ही मुक्ति जैसे सुख का मैं अनुभव करता हूँ - ऐसा टीकाकार मुनिराज कहते हैं।

गाँव-गाँव में वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ खोलिये।

परमभाव और अपरमभाव

परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रंथराज समयसार की १२वीं गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है –

सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे॥१२॥

जो शुद्धनय तक पहुँचकर श्रद्धावान हुए तथा पूर्णज्ञान-चारित्रवान हो गये, उन्हें तो शुद्ध (आत्मा) का उपदेश करनेवाला शुद्धनय जानने योग्य है; और जो जीव अपरमभाव में – अर्थात् श्रद्धा तथा ज्ञानचारित्र के पूर्ण भाव को नहीं पहुँच सके हैं, साधक अवस्था में ही स्थित हैं, वे व्यवहार द्वारा उपदेश करनेयोग्य हैं।

जिनशासन की प्राण-समान ११वीं गाथा में कहा है कि 'व्यवहारनय समस्त असत्यार्थ है और शुद्धनय सत्यार्थ है' वहाँ अतीन्द्रिय आनंद का प्रयोजन सिद्ध करने के लिये त्रिकाली एकरूप ज्ञायकभाव को मुख्य करके सत्यार्थ कहा है और पर्यायदृष्टि छुड़ाने के लिये उसे गौण करके व्यवहार कहकर असत्यार्थ कहा है। जैसे परवस्तु अपने में सर्वथा न होने से उसे अपनी अपेक्षा असत् कहा जाता है; उसीप्रकार पर्याय, भेद आदि को असत् कहने पर वे आत्मा में सर्वथा नहीं हैं, इसप्रकार कोई शुद्धनय के सर्वथा एकांत पक्ष में न प्रवर्ते; इसलिये ११वीं गाथा के तुरंत बाद १२वीं गाथा में पर्याय, पर्याय में है – ऐसा सिद्ध किया है।

शुद्धनय के अनुभव में पर्याय का अनुभव नहीं, अतः उसे गौण करके असत् कहकर शुद्धनय की दृष्टि करायी है। परंतु पर्याय-भेद सर्वथा नहीं है, ऐसा मानने पर मिथ्यात्व का प्रसंग आयेगा – क्योंकि पर्याय-भेद आदि को सर्वथा असत् मानने से संसार का नाश, अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव, मोक्ष की प्राप्ति आदि का अस्तित्व ही नहीं रहेगा। अतीन्द्रिय आनंद के अनुभवरूप प्रयोजन की सिद्धि भी पर्याय है, अभेद की दृष्टि भी पर्याय है; अतः यदि पर्याय का

सर्वथा निषेध किया जाये तो अभेद को विषय बनानेवाला कौन रहेगा ? पर्याय को सर्वथा असत् माननेवाले की मान्यता तो विज्ञानाद्वैतवादी तथा वेदांती जैसी हो जायेगी।

इसलिये आचार्यदेव कहते हैं कि हे भव्यो ! यदि तुम जिनमत को प्रवर्तना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय दोनों नयों को मत छोड़ो। १४ गुणस्थान व्यवहारनय के विषय हैं। यदि व्यवहारनय को नहीं मानोगे तो तीर्थ अर्थात् मोक्षमार्ग का नाश हो जायेगा। यदि निश्चयनय को नहीं मानोगे तो तत्त्व अर्थात् मोक्षमार्ग के कारण का नाश हो जायेगा। १४ गुणस्थान द्रव्य में न होने से आदरणीय नहीं; परंतु यदि उन्हें पर्याय में भी न माना जाये तो मोक्षमार्ग का नाश हो जायेगा। इसप्रकार दोनों नयों को मत छोड़ो अर्थात् दोनों नय यथापदवी जाने हुए प्रयोजनवान हैं।

धर्मपर्याय धर्मी से बाहर नहीं होती। जिनमत धर्मी के अभिप्राय में होता है। चौथा-पाँचवाँ गुणस्थान आदि के भेदों को स्वीकार न करने पर तीर्थ का नाश हो जायेगा। राग से धर्म होगा ऐसा व्यवहार का अर्थ नहीं है। आत्मा में अनंत गुण और अनंत पर्यायें हैं अवश्य। पहले शुद्धता कम थी, अब बढ़ गयी; इसप्रकार व्यवहार का स्वीकार न करे तो व्यवहार का नाश हो जायेगा। और भेद के आश्रय से शुद्धता की उत्पत्ति माने तो तत्त्व का नाश हो जायेगा।

जिन्हें शुद्धनय के आश्रय से पूर्णता प्रकट हुई है, उन्हें अशुद्धनय का अवलंबन लेने की आवश्यकता नहीं हैं, उसके ज्ञाता हो गये हैं। परंतु अभी जो परमभाव में वर्त रहे हैं अर्थात् जिन्हें सम्यग्दर्शन प्रकट होते हुए भी पूर्ण शुद्धता प्रकट नहीं हुई, ऐसे साधक जीव को व्यवहारनय का उपदेश करने योग्य है, जानने योग्य है।

'मैं शुद्ध ज्ञायक हूँ', ऐसी अंतर्दृष्टिपूर्वक जिसकी चारित्रदशा पूर्ण हो गयी, संपूर्ण वीतरागदशा और केवलज्ञान प्रकट हो गया, उसे व्यवहारनय का प्रयोजन नहीं है; परंतु अभेदस्वरूप की प्रतीति होते हुए भी जब तक पूर्ण वीतरागता न हो तब तक राग आता है, वह व्यवहार है, उस दशा को यथार्थ रूप से जानना चाहिये। व्यवहार स्वयं मिथ्यात्व नहीं, पर उससे लाभ मानना मिथ्यात्व है। राग को धर्म जानना व्यवहार और उससे धर्म मानना मिथ्यात्व है। अपरमभाव में स्थित जीव को सर्वज्ञ कथित पर्याय-भेद विकल्पों को बराबर जानना प्रयोजनवान है।

कुछ लोग कहते हैं कि १२वीं गाथा में मिथ्यादृष्टि को व्यवहार का और सम्यग्दृष्टि को

निश्चय का उपदेश करना योग्य कहा है, परंतु ऐसा नहीं है। परिपूर्ण स्वभाव की प्रतीति होते हुए भी वीतरागदशा न हो तब तक राग आता है, उसे जानना व्यवहार है।

● जब परवस्तु (कर्म) को व्यवहार कहा जाये, तब राग को निश्चय कहा जाता है।

● जब विकारी पर्याय को व्यवहार कहा जाये, तब मोक्षमार्ग को निश्चय कहा जाता है।

● जब मोक्षमार्ग को व्यवहार कहा जाये, तब द्रव्यस्वभाव को निश्चय कहा जाता है।

● जो राग होता है, वह अपनी पर्याय में निश्चय से होता है, तब कर्म के निमित्त को व्यवहार कहा जाता है।

● निर्विकल्प मोक्षमार्ग को निश्चय कहते हैं, तब देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा की राग वाली पर्याय को व्यवहार कहते हैं।

● जब शुद्ध चिदानंद द्रव्य को निश्चय कहते हैं, तब सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय को व्यवहार कहते हैं।

केवलज्ञान पर्याय त्रिकालीद्रव्य अपेक्षा अंश है। अंशीस्वभाव निश्चय का विषय है और केवलज्ञानपर्याय व्यवहार का विषय है। देखो! यदि व्यवहार को स्वीकार न किया जाये तो केवलज्ञान का अस्वीकार हो जायेगा। अंश का स्वीकार न करो तो अंशी का भी नाश हो जायेगा। व्यवहार से धर्म होगा ऐसा मानने पर निश्चय या व्यवहार कुछ भी नहीं रहेगा।

जिन जीवों को सोलह-वान शुद्ध स्वर्ण का ज्ञान-श्रद्धान और प्राप्ति हो गयी उन्हें पंद्रहवान तक का स्वर्ण कुछ प्रयोजनभूत नहीं। परंतु जिन्हें सोलहवान शुद्धस्वर्ण का ज्ञान और श्रद्धान तो है, पर अभी उसकी प्राप्ति नहीं हुई, उन्हें पंद्रहवान तक का स्वर्ण भी प्रयोजनवान है। उसीप्रकार जिसने अखंड एक स्वभावरूप ज्ञायकभाव को पर्याय में प्रकट किया अर्थात् पूर्ण शुद्धता प्राप्त की है, उसे शुद्धद्रव्य को कहनेवाला शुद्धनय ही जाना हुआ प्रयोजनवान है। परंतु जो जीव मध्यमभाव को ही अनुभवते हैं, अर्थात् जिन्हें अखंड एक परिपूर्ण तत्त्व का सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान तो है, परंतु पूर्ण वीतरागता प्रकट नहीं हुई; ऐसे मध्यमभाव का अनुभव करते हुए जीवों को साधक दशा में भिन्न-भिन्न समय में वर्तती हुई; शुद्धता की वृद्धि और अशुद्धता की हानिरूप अनेक भावों को दिखानेवाला व्यवहारनय उस काल में जाना हुआ प्रयोजनवान है। अतः वे व्यवहार द्वारा उपदेश करने योग्य हैं।

व्यवहारनय और उसका विषय–भेद, मिथ्यात्व नहीं; परंतु पर्याय में होनेवाले राग और भेद से लाभ मानना मिथ्यात्व है। शुद्धचैतन्य का अवलंबन छोड़कर भेद और व्यवहार से लाभ माने तो निगोद में जायेगा। पर्याय में राग है तो भी उससे लाभ नहीं। मैं तो शुद्ध ज्ञायक हूँ ऐसा भान होना सम्यग्दर्शन है और पर्याय में जितनी अपूर्णता है, उसे जानना व्यवहार है।

अभेद आत्मा के आश्रय से होनेवाले प्रथम–उपशम सम्यक्त्व के काल में जो अनुभव है, वह जघन्य भाव है। फिर मध्यम दशा में मध्यम चारित्र होता है। चतुर्थ गुणस्थान में प्रथम अनुभव के समय में जघन्य दशा है। चौथे से बारहवें गुणस्थान तक मध्यम भाव है और तेरहवें में उत्कृष्ट भाव है।

साधकदशा में होनेवाले भेद का नाम व्यवहार है। भेद का आदर करना व्यवहार नहीं। उत्कृष्ट परमभाव हो जाये तो व्यवहार नहीं रहता। जो निमित्त, राग या गुण–गुणी के भेद से सम्यग्दर्शन माने तो उसके निश्चय–व्यवहार एक भी सत्य नहीं होते। साधक दशा में पंच परमेष्ठी की भक्ति–पूजा, तीर्थयात्रा, दया–दान आदि के विकल्प होते हैं, वहाँ उत्कृष्ट चारित्र नहीं, जघन्य से आगे बढ़कर मध्यम भाव में वर्त रहा है। इन भेदों और उस दशा में होनेवाले राग को जानना, उस साधकदशा में प्रयोजनवान है। अनुभव होते ही पूर्ण दशा प्रकट नहीं हो जाती, कुछ समय तक साधकदशा रहती है। उसकी सीमा दिखाते हैं।

लोग कहते हैं कि वीतरागदशा न हो तब तक व्यवहार तो करना पड़ेगा? परंतु भाई! राग करने की बात ही नहीं है, राग आता है, उसे ज्ञानी जानते हैं।

अपूर्णदशा में, अशुद्धता के जितने अंश हैं, वे उस काल में जाने हुए प्रयोजनवान हैं अर्थात् परिपूर्ण शुद्धता प्रकट करना है और पर्याय में शेष अशुद्धता को हेय मानना प्रयोजनवान है। व्यवहारनय को जानकर उसका आदर करने की बात ही नहीं है, वह तो हेयरूप जानकर छोड़ने के लिये जाना हुआ प्रयोजनवान है।

यहाँ कोई कहे कि व्यवहार को जानकर क्या करना? उससे कहते हैं कि व्यवहारनय है ऐसा जानना और आदर करने योग्य नहीं, छोड़ने योग्य है ऐसा उसे जानने का प्रयोजन है। वस्तुस्वभाव–ज्ञायकस्वभाव कृतकृत्य है, परिपूर्ण है, उसे कुछ करने का प्रयोजन ही नहीं है। उसकी दृष्टिपूर्वक जिन्हें परिपूर्ण दशा प्रकट हुई है, उन्हें भी कुछ करना नहीं रहा। परंतु अभी

दृष्टि में कृतकृत्यता का स्वीकार मात्र हुआ है, पूर्णदशा प्रकट नहीं हुई, तब तक पर्याय में जिस समय जितनी शुद्धता बढ़ी और अशुद्धता घटी है, उसे बतानेवाला व्यवहारनय उस काल में जाना हुआ प्रयोजनवान है; अतः वे साधक जीव व्यवहार द्वारा उपदेश करनेयोग्य हैं।

जो ज्ञान स्वभावसन्मुख झुके उसे निश्चयनय कहते हैं और जो राग आता है, उसे जानना व्यवहारनय है। इसप्रकार अपने-अपने समय में दोनों नय कार्यकारी हैं। द्रव्य का अभेद अनुभव करना निश्चयनय का कार्य है, उस समय व्यवहारनय जाना हुआ प्रयोजनवान है। संवर-निर्जरा की पर्याय भी नाशवान होने से आदरणीय नहीं, अतः हेय है। फिर भी व्यवहारनय का विषय होने से जाननेयोग्य है।

मैं शुद्ध चैतन्य हूँ ऐसी दृष्टि तो हुई नहीं, शुभभाव में भी रहता नहीं, और पर्याय में राग होते हुए भी वीतरागता और पूर्णदशा मानता है; वह निश्चयाभासी है। अतः पूर्णदशा न हो तब तक राग और व्यवहार को जानना प्रयोजनवान है।

यदि कोई कहे कि सम्यग्दर्शन के पहले तो व्यवहार आदरणीय है न? उससे कहते हैं कि नहीं! सम्यग्दर्शन के पहले भी कैसा व्यवहार होता है, वह मात्र जाननेयोग्य है। सम्यग्दर्शन के पहले कैसे निमित्त होते हैं, यह जानने के लिये व्यवहार का उपदेश कार्यकारी है। जिनसे यथार्थ उपदेश मिलता है अर्थात् जिनके उपदेश में एकरूप शुद्ध ज्ञायकभाव की प्रेरणा दी जाये, वीतरागता की पुष्टि की जाये - ऐसे जिनवचनों को सुनना, धारण करना; ऐसे उपदेशदाताओं की भक्ति-वंदना आदि व्यवहार मार्ग में प्रवर्तना प्रयोजनवान है। सम्यग्दर्शन के पूर्व जिज्ञासु दशा में यथार्थ उपदेश का ग्रहण, मनन, चिंतवन तथा देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति-पूजा आदि का व्यवहार होता है। वस्तुतः तो उस भूमिका में ऐसा प्रवर्तन होता है, यह दिखाने के लिये उसे व्यवहार कहा है। वास्तव में निश्चयसम्यग्दर्शन के पहले व्यवहार होता ही नहीं। सम्यग्दर्शन के पहले कैसे भाव होते हैं, उनकी बात है परंतु इनसे सम्यग्दर्शन नहीं होता।

इसीप्रकार सम्यग्दर्शन के बाद भी जिन्हें पूर्णता प्राप्त नहीं हुई उन्हें जिनवचनों का श्रवण-मनन-चिंतवन तथा जिनबिम्ब के दर्शन-पूजन आदि का भाव तथा अणुव्रत-महाव्रत आदि व्यवहारचारित्र के ग्रहण का भाव होता है, ऐसा साधक जानता है; परंतु उससे पूर्णता नहीं होती ऐसा भी जानता है।

जब तक शुद्धोपयोग की साक्षात् प्राप्ति न हो तब तक यदि शुभोपयोगरूप प्रवर्तन का सर्वथा त्याग कर दे तो अशुभोपयोगरूप प्रवर्तन ही होगा और परंपरा से नरक-निगोद में जायेगा। अतः जब तक साक्षात् शुद्धता की प्राप्ति अर्थात् पर्याय में पूर्णता प्राप्त न हो तब तक व्यवहार भी इसप्रकार प्रयोजनवान है।

तब तक सम्यक्त्व नहीं होता

श्री समयसारजी शास्त्र की ११वीं गाथा की संस्कृत टीका के भावार्थ में पंडित जयचंदजी छाबड़ा लिखते हैं—"प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि काल से ही है और इसका उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं। और जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलंबन (सहायक) जानकर बहुत किया है; किंतु उसका फल संसार ही है। शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं और उसका उपदेश भी विरल है - वह कहीं-कहीं पाया जाता है। इसलिये उपकारी श्रीगुरु ने शुद्धनय के ग्रहण का फल मोक्ष जानकर उसका उपदेश प्रधानता से दिया है कि 'शुद्धनय भूतार्थ है, सत्यार्थ है, इसका आश्रय लेने से सम्यग्दृष्टि हो सकता है; इसे जाने बिना जब तक जीव व्यवहार में मग्न है, तब तक आत्मा का ज्ञान-श्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व नहीं हो सकता' ऐसा आशय समझना चाहिये।"

१०१) रुपये में आत्मधर्म के स्थायी ग्राहक बनकर अपनी आगामी पीढ़ियों के लिये भी आत्मधर्म सुरक्षित कर दीजिये।

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

अब ज्ञान तथा दर्शन दोनों गुणों के उपयोग को नयविभाग से कहते हैं। पहिले दूसरी गाथा में केवलज्ञान-दर्शन को द्रव्य से अभेद कहकर द्रव्यार्थिकनय का विषय कहा था। यहाँ उसी केवलज्ञान-दर्शन को भेद अपेक्षा से व्यवहारनय का विषय कहते है।

अट्ठ चदु णाण दंसण, सामण्णं, जीवलक्खणं भणियं।
ववहारा सुद्धणया, सुद्धं पुण दंसणं णाणं ॥६॥

आठ प्रकार के ज्ञान, चार प्रकार के दर्शन का धारक जीव है। यह व्यवहारनय से सामान्य (भेद रहित) जीव का लक्षण है। यहाँ तीन कुज्ञान को भी जीव का लक्षण कहा है। कारण कि वह जीव की अवस्था है। और शुद्धनय से शुद्धज्ञान-दर्शन को जीव का लक्षण सर्वज्ञदेव ने कहा है।

जैसे तम्बू खड़ा है। उसकी एक कील (खूंटी) ढीली हो तो सारा तम्बू एक सरीखा नहीं रहता। वैसे अनंत गुण का पिंड अखंड आत्मा है। उसके गुण-पर्यायों का स्वरूप जिसप्रकार परिपूर्ण है उसप्रकार स्वीकार न करे, न जाने, तो उसमें विरोध रहेगा; श्रद्धा बराबर नहीं होगी।

आठ प्रकार के ज्ञान, चार प्रकार के दर्शन हैं, उसको सामान्य रूप से जीव का लक्षण कहा है। इस लक्षण में संसारी तथा मुक्त जीव के भेद की अपेक्षा कहना योग्य नहीं अथवा शुद्ध-अशुद्ध उपयोग की व्याख्या नहीं की है। एकांत भेद अथवा अभेद नहीं है। किंतु त्रिकाली गुण से अभेद और पर्याय से भेदपना है।

जीव द्रव्य के उपयोगमयी अधिकार का वर्णन चलता है। ज्ञानगुण की सम्यग्ज्ञानरूप मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, और केवल ये पाँच अवस्थायें हैं। कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये मिथ्याज्ञान हैं। ऐसे त्रिकाली ज्ञानगुण की आठ अवस्थायें हैं। और दर्शनगुण की चक्षु, अचक्षु,

अवधि, और केवलदर्शन ये चार – इसप्रकार बारह प्रकार की पर्यायें हैं। वह आत्मा के ज्ञान-दर्शनगुण की स्वतंत्र दशा अवस्था है। उस भेद को व्यवहार जानो और अंशी-अभेद को निश्चय जानो। सम्यक्-श्रुतज्ञान प्रमाण है। उसके निश्चय और व्यवहार दो पहलू हैं। त्रिकाल को विषय करे वह निश्चय, और पर्याय को-अंश को, भेद को विषय करे, वह व्यवहार है।

चैतन्य का उपयोग बारह प्रकार का है। उसमें ज्ञानी को साधकदशा में मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय तथा चक्षु, अचक्षु, अवधिदर्शन ये सात उपयोग होते हैं। मिथ्यादृष्टि को कुमति, कुश्रुत, कुअवधिज्ञान तथा चक्षु, अचक्षुदर्शन होते हैं। बारह प्रकार के उपयोग भेद हैं, इसलिये व्यवहारनय का विषय है।

(१) केवलज्ञान, केवलदर्शन शुद्ध सद्भूत शब्द से वाच्य (कहने योग्य) अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय का विषय है, इसलिये वह निश्चयनय से आदरणीय नहीं है। आदर योग्य तो त्रिकाल स्वभाव है। आत्मस्वभाव से पूर्ण शुद्धपर्याय प्रकट हुई उसको अनुपचरित कहा, क्योंकि उसका संबंध प्रकट होने के बाद कभी छूटता नहीं है। यह आरोप नहीं है, किंतु प्रकट होने के बाद नित्य संबंध रहता है इसलिये अनुपचरित है। स्वभाव से प्रकट होता है और शुद्धरूप स्वयं का अंश है, इसलिये सद्भूत है; और भेद है, इसलिये व्यवहार है।

(२) छद्मस्थ को (अल्पज्ञ साधक जीव को) अपूर्ण ज्ञानदर्शन की अपेक्षा से चार ज्ञान की और तीन दर्शन की ऐसी सात पर्यायें, वह अशुद्ध सद्भूत शब्द से वाच्य उपचरित सद्भूत व्यवहारनय का विषय है। अपूर्ण है इसलिये अशुद्ध है और दूर हो जाता है इससे उपचरित है। वास्तविक में स्वयं का अंश है, इसलिये सद्भूत है, और वर्तमान भेद है इसलिये व्यवहार है।

(३) अज्ञानी को कुमति, कुश्रुत, कुअवधिज्ञान तथा चक्षु, अचक्षुदर्शन ये पाँच उपयोग हैं। अज्ञानी को नयज्ञान की प्रवृत्ति नहीं होती, लेकिन ज्ञानी उसको जानता है। उसके पाँच भेद उपचरित असद्भूत व्यवहारनय का विषय है। अशुद्ध है और चला जाता है – टल जाता है इसलिये उपचरित है। स्वभाव नहीं है, इसलिये असद्भूत है और भेद है, इसलिये व्यवहार है। मूल सूत्र में एक 'व्यवहार' शब्द मौजूद है, उसके सद्भूत अनुपचार, सद्भूत उपचार, असद्भूत उपचार – टीकाकार ने ऐसे तीन भेद किये हैं।

आचार्य ने सूत्र में एक शब्द लिखा हो, लेकिन भाव में अधिक गूढ़ महान् अर्थ का विस्तार होता है। जैसे किसी बड़े व्यापारी ने पृथक् कागज में (बही खाते में नहीं) आढ़तिया

पर डेढ़ पंक्ति में लिखा हो ''चैत्र शुक्ला पंचमी को वायदा रुपये ५३०) के भाव से एक लाख रुई की गाँठें लेना'' तो इतने पर से दोनों व्यापारियों की पूंजी, विश्वास, साहस, हिम्मत वगैरह का ख्याल आ सकता है। वैसे सर्वज्ञ-कथित आगम को जाननेवाले आचार्य भगवान थोड़ा लिखें, उसमें टीकाकार विशेष भाव निकालते हैं। उपरोक्त बारह प्रकार के भेद व्यवहारनय का विषय है। अब शुद्ध निश्चयनय से देखो तो सामान्य ध्रुव शुद्ध अखंड केवल (मात्र) ज्ञान तथा दर्शन ये दोनों जीव के लक्षण हैं।

कोई पूछे कि इसमें धर्म कहाँ आया? तो कहते हैं कि बारह प्रकार के उपयोग की स्वतंत्रता समझे, वह भेद है इसलिये व्यवहार है, अतएव हेय है, ऐसा समझे और त्रिकाल परिपूर्ण ज्ञान-दर्शन स्वभाव है वही उपादेय है ऐसा समझे, तो धर्म होता है।

कैरी है उसका रंग-गुण कायम रहता है। उसके हरे रंग में से पीली अवस्था होती है, वह अनित्य पर्याय है, उत्पाद-व्ययरूप है। उसीप्रकार आत्मा वह अनंत गुण का पिंड है। उसमें त्रिकाल एकरूप रहनेवाले ज्ञानदर्शन वगैरह गुण हैं। उनकी बारह प्रकार की पर्यायें हैं; वे बारह प्रकार भेद हैं, इससे वह व्यवहार है। निश्चय से तो त्रिकाल एकरूप ज्ञानदर्शन स्वभाव यह जीव का लक्षण है। ऐसा स्वभाव इस समय भी उपादेय मानकर उसमें एकाग्रता करे तो धर्म होता है।

यहाँ आत्मा के ज्ञान-दर्शन के बारह प्रकार उपयोग के वर्णन में उपयोग शब्द से कहने योग्य बात क्या है? उस उपयोग द्वारा स्व-परपदार्थों के ज्ञानरूप वस्तु को जानने देखनेरूप प्रवृत्ति का ग्रहण किया हुआ है। उसमें आचरण, अनुष्ठान, चारित्र गुण की बात नहीं है। यहाँ स्व-पर को जानना देखना उपयोग शब्द का वाच्य भाव है। और दयादिरूप शुभभाव, हिंसादिरूप अशुभभाव तथा शुभाशुभ रहित शुद्ध - इन तीन उपयोग की विवक्षा में तो उपयोग शब्द से शुभ-अशुभ तथा शुद्ध भावों का ग्रहण जानना। शुभ-अशुभ राग में रहना वह अशुद्ध आचरण है, सामनेवाला जीव जिये अथवा मरे इसमें शुभ-अशुभ नहीं है; किंतु जिलाने मारने आदि का जैसा भाव, उस अनुसार पुण्य-पापमय अशुद्ध उपयोग है और वह चारित्र गुण की विकारी अवस्था है। जीव स्वतंत्ररूप से उसे करे तो वह (उपयोग) होता है, कोई कराता नहीं है।

शुभाशुभ आचरणरूप अशुद्ध उपयोगरहित त्रिकाली शुद्ध ज्ञान-दर्शनस्वभाव की शुद्ध श्रद्धापूर्वक जितने अंश में वीतराग दशा हुई वह शुद्धोपयोग है। ये तीनों उपयोग आचरणरूप

हैं। जैसे चने में स्वाद भरा हुआ है, उसको सेकें तो अंदर में जो स्वाद शक्तिरूप से था, वह प्रकट हुआ है। वैसे आत्मा में पूर्णज्ञान आनंद शक्ति त्रिकाल है, उसको पहिचानकर उपादेयरूप से अंगीकार कर उसमें एकाग्र होय तो पूर्ण सहजानंद दशा प्रकट होती है। जिसको स्वाद चाहिये हो तो उसके अंदर जो स्वयं का त्रिकाल पूर्ण ज्ञान-दर्शनस्वभाव है, उसको ही उपादेय मानना चाहिये, वही सच्चे सुख का कारण है।

प्रत्येक पदार्थ नित्य स्वयं की योग्यता से स्थिर रहकर पर्यायरूप से परिवर्तन करने का स्वभाववाला है। आत्मा भी नित्य होने से ज्ञानादि अनंत गुणरूप है, उसकी शक्ति नित्य है, उसका श्रद्धा ज्ञान करके उसमें एकाग्र हो, तो अल्पज्ञान और रागादि मिटकर परिपूर्ण स्वभाव दशा प्रकट होती है। किसी निमित्त से हो, ऐसा माने तो कोई वस्तु स्वतंत्र नहीं रहती।

आत्मा स्वयं, स्वयं का शुद्ध उपादान कारण होने से केवलज्ञान-दर्शनरूप स्वयं होता है, उस अखंड उपयोग को उपादेय कहा है। निश्चय से त्रिकाल अनंत गुण का पिंडरूप शुद्ध आत्मद्रव्य है, वही उपादेय है। ऐसा नियम होने से नैयायिकमती के जो गुण-गुणी, ज्ञान और आत्मा दोनों को एकांत से भेद करते हैं, उसका निराकरण होता है। ऐसा नित्य स्वतंत्र स्वभाव यथार्थरूप से माने बगैर, सत्य धर्म का विचार भी नहीं आता।

अब आत्मा अमूर्त है उसका वर्णन करते हैं। आत्मा 'अमूर्त' अर्थात् स्पर्श, रस, गंध, वर्ण रहित है। तथा अतीन्द्रिय अर्थात् इंद्रियों से नहीं जाना जाता ऐसा है। उसका यथार्थ (सत्य) ज्ञान वह मोक्ष का कारण है। मूर्त जो पाँच इंद्रियाँ और उनके शब्दादि विषय हैं, उनसे रहित आत्मा है। निंदा प्रशंसा के शब्द भी जड़ हैं। वर्ण, गंध, रस, स्पर्श को अज्ञानी भला-बुरा मानकर उनसे रागी-द्वेषी होता है और वह बाह्य विषयों में सुख मानता है।

ज्ञानी समकिती छह खंड का स्वामी हो, अनेक प्रकार से पुण्य का ठाठ हो, तो भी उसको अल्प आसक्ति है। वह परसंयोगों से राग-द्वेष अथवा सुख-दुःख नहीं मानता। मेरी शांति और सुख मेरे अतीन्द्रिय ज्ञानानंद स्वभाव में है, ऐसी मान्यता होने से उसको विषयों में जरा भी रुचि नहीं है। ज्ञानी की दृष्टि मन-इंद्रियों से पार पूर्णानंद चैतन्य पर है, वह स्वभाव को कभी छोड़ता नहीं, संयोग के कारण से आसक्ति नहीं मानता। अज्ञानी वर्तमान संयोग, विकार में रुचिवान है। उसको शब्दादि विषयों में मनोज्ञता प्रतिभासित होती है, उसमें वह समर्पित हो जाता है, और पर से राग-द्वेष, लाभ-हानि मानता है।

कर्म जड़ है, उसका उदय होने से, उसका निमित्तपना अज्ञानी की दृष्टि में होने से, मूर्तपने की प्रतीति होने से, अज्ञानी को व्यवहारनय से मूर्तिक कहा है। निश्चय से तो आत्मा सदा अमूर्तिक ही है, लेकिन उपचार से मूर्तिक के संबंध से व्यवहार में मूर्तिक है, ऐसा कथन करने में आता है। यह बात ७वीं गाथा में कहते हैं :-

वण्णरस पंच गंधा दो फासा अट्ठ णिच्छुया जीवे।
णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति वंधादो॥७॥

निश्चय से वस्तुस्थिति से देखो तो जीव में वर्णादि नहीं है। अर्थात् पाँच प्रकार के वर्ण जीव की पर्याय नहीं हैं। रसगुण पुद्गल में है, उसकी पाँच पर्यायें हैं वे जीव में नहीं हैं। गंधगुण और उसकी दो पर्यायें, स्पर्शगुण और उसकी आठ पर्यायें जीव में नहीं हैं; इसलिये जीव अमूर्त है, और बंधन-संयोग के उपचार की अपेक्षा से व्यवहार से जीव मूर्त कहा जाता है।

शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध बुद्ध एक स्वभावधारी जो शुद्ध जीव है - वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, उसके नहीं हैं। व्यवहार से भी जीव मूर्त्त नहीं होता, मूर्त्त है ऐसा मात्र बोला जाता - कहा जाता है। इस हेतु से यह जीव सदा अमूर्त्त है। खट्टा तो नींबू है, मैं खट्टा हो गया ऐसा नहीं होता। खट्टी वस्तु ज्ञान में प्रवेश नहीं होती। ज्ञान ज्ञानरूप में रहकर उसको जानता है ऐसा उसका स्वभाव है। आत्मा सदा अमूर्त्त अतीन्द्रिय ज्ञानमात्र स्वभावी है। लेकिन स्वभाव को भूलकर अज्ञानी मानता है कि मुझे सुकोमल स्पर्श हुआ है, यह मुझे ठीक (अच्छा) लगता है, इत्यादि प्रकार से वह विपरीत मान्यता करता है।

शंका - यदि जीव अमूर्त्तिक है तो मूर्त्तिकपने से रहित जीव को मूर्त्तिक कर्म का बंध क्यों होता है ?

उत्तर - 'ववहारा मुत्ति' यद्यपि जीव अमूर्त्तिक ही है, तथापि अनुपचरित असद्भूत व्यवहार से मूर्त्त है और इससे बंध होता है।

कर्म नोकर्म का निकट संबंध है इसलिये अनुपचरित; वह स्वयं का स्वरूप नहीं है, दूर हो जाता है इसलिये असद्भूत; निमित्त है और भेद होता है इसलिये व्यवहार - इस नय की अपेक्षा से आत्मा मूर्त्त है, इसलिये कर्म बंध होता है।

शंका - यह मूर्त्त किस कारण से है ?

उत्तर – अनंत ज्ञानादि शक्ति की पूर्ण शुद्धतारूप से प्रकट दशा (पर्याय) की प्राप्ति वह मोक्ष है। इससे विपरीत अनादि कर्म बंध से मूर्त्त कहने में आता है। जैसे कोई लड़के से कहे कि तू तो अच्छा था, लेकिन नीच की संगति से तू चोर हो गया। अपराध तो उसी का था, लेकिन सुधारने के लिये पहले कुलीनता का ज्ञान कराया जाता है। वैसे तू सिद्ध परमात्मा जैसा है, लेकिन कर्म बंध से तू बाँधा गया है इससे मूर्त्त है, ऐसा कहा है। बंधन के लक्षण की अपेक्षा से बंधन के प्रति जीव की एकता है। निश्चय से स्वलक्षण से देखो तो जीव को अमूर्त्तत्व कायम है। यहाँ तात्पर्य ऐसा है कि अमूर्त्त शुद्धात्मा के भान बिना ही जीव ने अनादि से भ्रमण किया है।

अब यह कहते हैं कि इस अमूर्त्त शुद्ध ज्ञानानंद स्वभाव में एकाग्रदृष्टि कर स्वसन्मुखता में जागृत होवो जिससे पाँच इंद्रियों के विषयों–प्रति के राग का त्याग हो जाता है। प्रतिमा के दर्शन करना, भगवान की वाणी सुनना यह भी शुभराग का विषय है। अपने सिवाय सब पर हैं, अतएव त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव साक्षात् देखने को मिलें तो वह भी पर हैं, और उनके प्रति के झुकाव में राग होता है। अंतरस्वभाव के अवलंबन में कोई पर सहायक नहीं है। यहाँ इंद्रियों के विषय छोड़ने के लिये कहा है, वह तो निमित्त से कथन किया है।

अहो! अतीनिद्रय ज्ञाता स्वभाव है, उसको भूलकर शब्दादि में रुकना, वह सब राग का विषय है। द्रव्य–गुण–पर्याय की स्वतंत्रता जाने बगैर ज्ञान में यथार्थता नहीं आती। प्रथम दृष्टि में स्वतंत्र स्वभाव के झुकाव द्वारा पराश्रय की दृष्टि छूट जाये और फिर अंदर ज्ञानारूप से एकाग्र होय, वह ध्यान है। ऐसे ज्ञान में अपूर्व शांति का साक्षात्कार होता है।

इसप्रकार इस गाथा द्वारा जीव को वास्तविक स्वरूप से सदा अमूर्त्त कहकर भट्ट और चार्वाक मत वाले जीव जो कि जीव को मूर्त्त मानते हैं, उनका निषेध किया।

'घी का घड़ा' घी के संयोग से व्यवहार से कहा जाता है, लेकिन इससे घड़ा घी का नहीं हो जाता। उसीप्रकार भगवान आत्मा सदा अमूर्तिक ही है, मूर्तिक कर्म के संबंध से मूर्त है – ऐसा उपचार से कहा जाता है, लेकिन इससे कुछ मूर्तिक नहीं हो जाता। [क्रमशः]

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न– भगवान तो परद्रव्य हैं, क्या सम्यक्त्वी भी पर की स्तुति करता है ?

उत्तर– भाई ! आपने अभी वीतराग परमात्मा के गुणों की महिमा जान नहीं पायी, इसी कारण ऐसा प्रश्न आपको उठा है। सर्वज्ञ परमात्मा के प्रति स्तुति का जैसा भाव ज्ञानी को उल्लसित होता है, वैसा अज्ञानी को कदापि नहीं होता। भले ही भगवान हैं तो परद्रव्य; परंतु अपनी इष्ट-साध्य ऐसी जो वीतरागता और सर्वज्ञता जहाँ भगवान में देखता है, वहाँ उन गुणों के प्रति बहुमान से धर्मी का हृदय उल्लसित हुए बिना रहता नहीं। वीतरागता का जिसे प्रेम है, वह वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा को देखते ही भक्ति में निमग्न हो जाता है। भले ही भक्ति के समय शुभराग है, परंतु उसमें बहुमान तो वीतराग स्वभाव का ही प्रवाहित हो रहा है। इसी का नाम वीतराग की भक्ति है।

प्रश्न– साधक की दशा कैसी होती है ?

उत्तर– साधक जीव को एक विकल्प से जो पुण्य बँधता है, वह पुण्य भी जगत को विस्मय उत्पन्न करता है, तो फिर उसकी निर्विकल्प साधक भावना की तो बात ही क्या ? अहा ! साधक भाव के एक अंश की ही ऐसी अचिंत्य महिमा है कि तीर्थंकर प्रकृति का पुण्य भी उसको नहीं पहुँच सकता। तीर्थंकर प्रकृति तो विभाव का फल है और साधक भाव है स्वभाव का फल – दोनों की जाति ही भिन्न है। साधक को चैतन्य की साधना के लिये जगत में सब कुछ अनुकूल है – उसको कहीं प्रतिकूलता है ही नहीं; क्योंकि उसकी साधना निजात्मा के आधार से है, बाहर के आधार से नहीं; साधक तो प्रतिकूलता के प्रसंग को भी धर्म भावना की तीव्रता का तथा जिनभक्ति-आत्म-साधना आदि की उत्कृष्टता का कारण बना लेता है।

प्रश्न– धर्म का मर्म क्या है ?

उत्तर– आत्मा अपने स्वभाव-सामर्थ्य से पूर्ण है और पर से अत्यंत भिन्न है – ऐसी स्व-पर की भिन्नता को जानकर स्वद्रव्य के अनुभव से आत्मा शुद्धता को प्राप्त करता है, यही धर्म का मर्म है।

प्रश्न– जीव अभी (वर्तमान में) पुण्य-पाप करता है, उसका फल कब मिलता है ?

उत्तर– किये हुए पुण्य-पाप का फल किसी जीव को इसी भव में प्राप्त हो जाता है और किसी को अगले जन्मों में मिलता है। किसी को पुण्यभाव एवं पवित्रता की विशेषता के बल से पूर्व के पाप संक्रमित होकर पुण्यरूप भी हो जाते हैं। इसीप्रकार तीव्र पाप से पूर्व का पुण्य पलट कर पापरूप भी हो जाता है। यह बात पूर्वबद्ध कर्मों की अपेक्षा से की है। जब परिणाम अपेक्षा से विचार करें तो पुण्य-पाप के भावों का भोग तो उन परिणामों के समय ही जीव को हो जाता है, उनकी मंद-तीव्र आकुलता का तो उसी समय जीव को वेदन हो जाता है। कोई जीव शुद्धता के बल से पूर्वबद्ध कर्मों को उनके फल मिलने से पहले ही छेद डालता है।

प्रश्न– वस्तु के द्रव्यस्वभाव में अशुद्धता नहीं है तो पर्याय में अशुद्धता कहाँ से आती है ?

उत्तर– वस्तु 'द्रव्य' और 'पर्याय' ऐसे दो स्वभाव वाली है। उनमें से द्रव्यस्वभाव में अशुद्धता नहीं है, किंतु पर्याय का स्वभाव 'शुद्ध' और 'अशुद्ध' ऐसे दो प्रकार का है अर्थात् पर्याय की अशुद्धता द्रव्यस्वभाव में से आयी हुई नहीं है; वह तो तत्समय की पर्याय का ही भाव है, द्वितीय समय में उस पर्याय का व्यय होने पर वह अशुद्धता भी मिट जाती है। पर्याय की शुद्धता और अशुद्धता के संबंध में नियम यह है कि जब पर्याय द्रव्याश्रय से परिणमन करती है, तब शुद्ध और पराश्रय से परिणमन करती है, तब अशुद्ध होती है। परंतु वह अशुद्धता न तो पर में से ही आयी है और न द्रव्यस्वभाव में से ही आयी है।

प्रश्न– स्वानुभव मनजनित है या अतीन्द्रिय है ?

उत्तर– वास्तव में स्वानुभव में मन और इंद्रियों का अवलंबन नहीं है इसलिये वह अतीन्द्रिय है; परंतु स्वानुभव के समय मति-श्रुतज्ञान विद्यमान है और वह मति-श्रुतज्ञान मन अथवा इंद्रियों के अवलंबन बिना होता नहीं, इस अपेक्षा से स्वानुभव में मन का

अवलंबन भी कहा गया है। वास्तव में जितना मन का अवलंबन टूटा उतना ही स्वानुभव है – स्वानुभव में ज्ञान अतीन्द्रिय है।

प्रश्न– निर्विकल्प अनुभूति में मन का संबंध छूट गया है, यह बात कितने प्रतिशत सत्य है ?

उत्तर– शतप्रतिशत सत्य है। वहाँ निर्विकल्पतारूप जो परिणमन है, उसमें तो मन का अवलंबन किंचित् मात्र भी नहीं है, क्योंकि उसमें तो मन का संबंध सर्वथा छूट गया है; परंतु उस समय जो अबुद्धिपूर्वक राग का परिणमन शेष रह गया है, उसमें मन का संबंध है – ऐसा समझना।

प्रश्न– अनुभव द्रव्य का है या पर्याय का ?

उत्तर– 'अनुभव' में अकेला द्रव्य या अकेली पर्याय नहीं है, किंतु स्व-सन्मुख झुकी हुई पर्याय द्रव्य के साथ तद्रूप हुई है, अतः द्रव्य-पर्याय के बीच में भेद नहीं रहा; ऐसी जो दोनों की अभेद अनुभूति – वह अनुभव है। द्रव्य और पर्याय के बीच में भेद रहे तब तक निर्विकल्प अनुभव नहीं होता।

प्रश्न– गुण-भेद के विचार से भी मिथ्यात्व न टले तो मिथ्यात्व कैसे टलेगा ?

उत्तर– शुद्धात्मवस्तु जिसमें राग और मिथ्यात्व है ही नहीं – उस शुद्धवस्तु में परिणाम तन्मय होने पर मिथ्यात्व टल जाता है, दूसरा कोई उपाय मिथ्यात्व के दूर करने का नहीं है। भाई ! गुण-भेद का विकल्प भी शुद्धवस्तु में नहीं है; शुद्धवस्तु की प्रतीति गुण-भेद के विकल्प की अपेक्षा भी नहीं रखती। वस्तु में विकल्प नहीं और विकल्प में वस्तु नहीं। इसप्रकार दोनों की भिन्नता जानकर परिणति विकल्प में से हटकर स्वभाव में आवे तब मिथ्यात्व का अभाव हो जाता है – यही मिथ्यात्व टालने की रीति है, अर्थात् उपयोग और रागादिक का भेद-ज्ञान होना ही सम्यक्त्व का मार्ग है। इसलिये विकल्प की अपेक्षा चिदानंदस्वभाव की अनंत महिमा भासित होकर उसका अनंत गुणा रस आना चाहिये।

प्रश्न– चैतन्य में विकल्प का प्रवेश है या नहीं ?

उत्तर– विकल्प से निर्विकल्प चैतन्य के अनुभव की तरफ जायेंगे – ऐसा जो मानता है, वह विकल्प को और निर्विकल्प तत्त्व को – दोनों को एक मानता है, अतः उसे विकल्प का

ही अनुभव रहेगा; किंतु विकल्प से छूट कर निर्विकल्प चैतन्य का अनुभव नहीं होगा। जो विकल्प को साधन के रूप में स्वीकार करता है, वह विकल्प का अवलंबन छोड़कर आगे नहीं बढ़ सकता अर्थात् विकल्प से पार ऐसा चैतन्यतत्त्व उसके अनुभव में नहीं आ सकता। भाई! चैतन्यतत्त्व और विकल्प – इन दोनों की तो जाति ही जुदी है। चैतन्य में से विकल्प की उत्पत्ति नहीं होती और विकल्प का प्रवेश चैतन्य में नहीं होता। इसप्रकार दोनों की अत्यंत भिन्नता को अंतरंग से विचार कर चैतन्य की ही भावना में तत्पर रहो। चैतन्य में जैसे-जैसे निकटता होती जाती है, वैसे-वैसे विकल्पों का शमन होता जाता है, पश्चात् चैतन्य में लीन होने पर विकल्पों का सर्वथा लोप हो जाता है। इस भाँति चैतन्य में विकल्प नहीं हैं – ऐसे भिन्न चैतन्य का तुम तीव्र लगन से चिंतवन करो।

प्रश्न– ज्ञानी का ज्ञान स्व तथा पर दोनों को जानता है, तो भी उसका ज्ञानोपयोग स्व में स्थिर न रहकर पर की तरफ जाता है। यह दोष वास्तव में ज्ञान का है या नहीं?

उत्तर– पर में उपयोग के जाते समय ज्ञानी के ज्ञान की सम्यकता का अभाव होकर मिथ्यापना तो होता नहीं – इस अपेक्षा से ज्ञानी के ज्ञान में दोष नहीं है, परंतु अभी ज्ञान ने केवलज्ञानरूप परिणमन नहीं किया है, वह दोष तो ज्ञान का ही है, क्योंकि ज्ञान का स्वभाव तो केवलज्ञानरूप होने का है; अतः जब तक ज्ञान केवल ज्ञानरूप परिणमन न करे तब तक वह सदोष है, सावरण है, मिथ्या न होने पर भी दोषी तो है। उपयोग भले स्व में हो फिर भी पूर्ण केवलज्ञानरूप से परिणमन नहीं किया वह दोष तो ज्ञान का ही है। ऐसा होने पर भी उस समय जो राग है, वह कहीं ज्ञानकृत नहीं है – राग तो चारित्र का दोष है।

किसकी शरण लें?

आठ-दस हजार रुपये का वेतन या पाँच-दस लाख की कमाई यह सब तो नश्वर हैं ही; परंतु यहाँ तो जो राग होता है, वह भी नश्वर है और संवर, निर्जरा मोक्ष तथा केवलज्ञान की पर्यायें होती हैं, वे भी उत्पाद-व्ययशील परिणाम होने से नश्वर हैं। भगवान आत्मा ही एक त्रिकाल अविनश्वर है। उसकी शरण एवं आश्रय लेना चाहिये।

समाचार दर्शन

सोनगढ़ : पूज्य गुरुदेवश्री सुखशांति में विराजते हैं। उनका स्वास्थ्य ठीक है। दोनों समय मार्मिक प्रवचन एवं रात्रि-चर्चा शांतिपूर्वक चल रही है। दिनांक ११-८-७७ से शिविर प्रारंभ है, जिसमें लगभग एक हजार आत्मार्थियों के आने की संभावना है।

कृपया ध्यान दें

१. सोनगढ़ शिक्षण शिविर के अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन समयसार तथा समयसार कलशटीका पर होंगे। कक्षा में मोक्षमार्गप्रकाशक तथा जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला का अध्ययन कराया जावेगा। अत: जो महानुभाव शिक्षण शिविर में पधारें उनके पास यदि उक्त ग्रंथ हों तो कृपया अवश्य साथ लेते आवें।

२. वर्षाकालीन शिक्षण शिविर एवं प्रवचनकार-प्रशिक्षण शिविर के अवसर पर सोनगढ़ में निम्नलिखित संस्थाओं की मीटिंगें निम्नानुसार हैं :-

- श्री जैन अतिथि सेवा समिति - २८-८-७७
- दिगम्बर जैन मुमुक्षु महामंडल की कार्यकारिणी - २८-८-७७
- श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु महामंडल की सामान्य सभा - २९-८-७७
- श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के ट्रस्टियों की सभा - २९-८-७७

प्रवचन-प्रसार योजना

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन नियमित रूप से टेप हो रहे हैं। जो मुमुक्षु भाई प्रवचन के टेप की नकल चाहते हों वे रील तथा कैसेट निम्नलिखित पते पर भेजने की कृपा करें -

- टेपरिकार्डिंग विभाग, श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) ३६४२५०

गुजराती आत्मधर्म के पाठकों को आवश्यक सूचना

संस्था का हिसाबी वर्ष जुलाई से जून तक का हो जाने के कारण इस वर्ष से गुजराती आत्मधर्म का वार्षिक शुल्क ईस्वी सन् के अनुसार लेना निश्चित हुआ है। इसलिये सभी ग्राहकों से अनुरोध है कि अब वे १ दिसम्बर १९७७ से ३० जून १९७९ तक १९ माह का शुल्क ९ रुपये मनिआर्डर द्वारा शीघ्र भेजें। **- तंत्री, श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़**

महत्त्वपूर्ण समाचार

श्रवणबेलगोला स्थित भगवान बाहुबली की विशालकाय मूर्ति के पास में ही पहाड़ के पत्थर तोड़ने से मूर्ति को खतरा पैदा हो रहा था। कर्नाटक के मुख्यमंत्री श्री देवराज अर्स ने शीघ्र कार्यवाही कर पत्थर तोड़ने का कार्य बंद करने का आदेश दे दिया है।

– माणेकलाल आर० गाँधी, बम्बई

श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय का उद्घाटन सानंद संपन्न

जयपुर –दिनांक २४–७–७७ को श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय का उद्घाटन श्री साहू श्रेयांसप्रसादजी जैन द्वारा सानंद संपन्न हुआ। इस अवसर पर बोलते हुए साहूजी ने इसके संचालकों को धन्यवाद दिया और कहा कि डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के संरक्षणत्व के कारण इस महाविद्यालय की सफलता निश्चित ही है। राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री भैरोंसिहजी शेखावत ने अपने मुख्य अतिथिय भाषण में संस्था के प्रति मंगलकामना व्यक्त करते हुए सिद्धांतों से किसी भी कीमत पर समझौता न करने की सलाह दी। इसके पूर्व श्री नेमीचंदजी पाटनी ने विद्यालय एवं पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की गतिविधियें का संक्षिप्त परिचय दिया। स्वागताध्यक्ष श्री कपूरचंदजी पाटनी ने अतिथियों का परिचय देते हुए पुष्पहारों से स्वागत किया। कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता ने ट्रस्ट का संक्षिप्त परिचय देकर अतिथियों को मालार्पण कर स्वागत किया। तत्पश्चात् पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की ओर से डॉ० भारिल्ल ने भी स्वागत किया तथा श्री महेन्द्रकुमारजी सेठी ने सम्मानीय अतिथियों को जैन ग्रंथों के सेट भेंट किये।

श्रीमान् त्रिलोकचंदजी जैन उद्योग मंत्री राजस्थान, श्री निर्मलचंदजी जैन संसद सदस्य, श्री मोहनलालजी छाबड़ा संसद सदस्य एवं अध्यक्ष श्री लालचंदजीभाई मोदी ने भी सभा को संबोधित किया। अंत में डॉ० भारिल्ल ने आभार प्रदर्शन किया।

इस अवसर पर बाहर से भी सैकड़ों लोग पधारे थे। स्थानीय उपस्थिति सीमातीत थी। टोडरमल स्मारक भवन का विशाल हाल खचाखच भरा था तथा काफी संख्या में लोग बाहर खड़े थे। यह भी सुखद संयोग ही रहा कि विगत ८ दिनों से निरंतर वर्षा हो रही थी, पर इस दिन वर्षा नहीं हुई और उत्सव पूर्ण आनंद के साथ संपन्न हुआ। उसके बाद भी ८ दिन तक वर्षा बराबर चलती रही है।

– अखिल बंसल

श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को अभूतपूर्व योगदान

ट्रस्ट के अध्यक्ष श्रीमान् बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता ने ट्रस्ट के संबंध में फैली भ्रांतियों के निराकरण एवं सहयोग के लिये आगरा, ग्वालियर के आस-पास के अनेक ग्रामों का दौरा किया। इस दौरे में पंडित ज्ञानचंदजी तो उनके साथ रहे ही, आसपास के अनेक प्रतिष्ठित लोग भी उनके साथ रहे। उनके आध्यात्मिक प्रवचनों का लाभ तो समाज को मिला ही; साथ ही ट्रस्ट के संबंध में फैली भ्रांतियों का निराकरण भी हुआ तथा आशातीत आर्थिक सहयोग भी प्राप्त हुआ। इस दौरे में वे आगरा, एत्मादपुर, फिरोजाबाद, गोरमी, ग्वालियर, मौ, गोहद, भिंड, जसवंतनगर, इटावा, करहल, भोगाँव आदि स्थानों पर गये। इसके बाद वे सिवनी, छिंदवाडा, नागपुर आदि स्थानों के लिये रवाना हो गये हैं।

समाज का यह अभूतपूर्व आर्थिक सहयोग ट्रस्ट के प्रति समाज के विश्वास एवं सद्भाव को व्यक्त करता है।

- ब्रह्मचारी धन्यकुमार बेलोकर

श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट की मीटिंग संपन्न

जयपुर : श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट द्वारा संचालित श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के उद्घाटन के अवसर पर ट्रस्टियों एवं विशेष आमंत्रित व्यक्तियों की मीटिंग सानंद संपन्न हुई। जिसमें सर्वश्री बाबूभाई मेहता फतेपुर, लालचंदभाई मोदी बम्बई, ब्रह्मचारी धन्यकुमारजी बेलोकर शिरपुर, शांतिभाई जवेरी बम्बई, माणिकलाल आर० गाँधी बम्बई, नेमीचंदजी पाटनी आगरा, नेमीचंदजी पाण्ड्या गौहाटी, रतनलालजी गंगवाल कलकत्ता, डालचंदजी भोपाल एवं जवाहरलालजी विदिशा ट्रस्टीगणतथा सर्वश्री पन्नालालजी गंगवाल कलकत्ता, बलूभाई बम्बई, मीठाभाई बम्बई, बसंतभाई दोशी बम्बई, डॉ० हुकमचंद भारिल्ल जयपुर, महेन्द्रकुमारजी सेठी जयपुर, रावजीभाई फलटन आदि विशेष आमंत्रित महानुभाव उपस्थित थे। मीटिंग में आगामी वर्ष का बजट पास किया गया तथा गत वर्ष की प्रगति की रिपोर्ट पर पूरी-पूरी मीमांसा करने के बाद नवीन योजनाओं पर विचार-विमर्श हुआ; जिनमें महाविद्यालय के संचालन, श्री दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी के सहयोग से तीर्थ-सर्वेक्षण की योजना को चालू करना तथा साहित्यिक अनुसंधान योजना आदि को चालू करने का निर्णय लिया गया।

अंत में श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री नवनीतभाई चुन्नीलाल

जवेरी के आकस्मिक निधन पर २ मिनिट मौन रहकर शोक व्यक्त किया गया तथा शोक प्रस्ताव भी पास किया गया।

– ब्रह्मचारी धन्यकुमार बेलोकर

वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं की निरीक्षण रिपोर्ट

समिति के निरीक्षक श्री पंडित गोविंदप्रसादजी जैन ने भीलवाड़ा, कुरावड़, कूंण, लूंणदा, कुशलगढ़, बागीदौरा, नौगामा, आंजना, अरथूना, कलिंजरा, दाहौद, बडौदिया स्थित पाठशालाओं का निरीक्षण किया। इसके पश्चात् खुरई, बीना, भोपाल (पिपलानी, टी.टी. नगर और चौक), तामोट, सीहौर, उज्जैन, मक्सी, महिदपुर; इसप्रकार २० स्थानों पर चल रहीं लगभग २५ पाठशालाओं का निरीक्षण किया और उनके संबंध में रिपोर्ट दी। आपके महत्त्वपूर्ण सुझावों और प्रेरणा से पाठशालाओं के संचालन में स्थिरता आई।

मंत्री, भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति

नवीन वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ

भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति के निरीक्षक श्री पंडित गोविंदप्रसादजी जैन के पाठशालाओं के निरीक्षण कार्य के दौरान उनकी ही प्रेरणा से जगत (उदयपुर, राज०), बल्लभनगर (उदयपुर, राज०), बेरसिया, अबदुल्लागंज, मंडीदीप तथा भोपाल (मंगलवारा) में नवीन पाठशालाएँ प्रारंभ हुई हैं। इन पाठशालाओं में श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है।

– मंत्री, परीक्षा बोर्ड

ललितपुर – यहाँ दिनांक १६ जुलाई से २८ जुलाई तक पंडित कैलाशचंदजी बुलंदशहरवाले पधारे। आपके द्वारा तीनों समय क्लासें चलाई जाती थीं, जिससे समाज में अभूतपूर्व धर्मप्रभावना हुई।

– महेन्द्रकुमार नायक

जयपुर में अभूतपूर्व आध्यात्मिक वातावरण

आजकल श्रीमान् पंडित लालचंदभाई बम्बई, श्री पंडित प्रकाशचंदजी 'हितैषी' दिल्ली के प्रवचनों से जयपुर का वातावरण अध्यात्ममय हो रहा है। श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के उद्घाटन के समय से ही प्रातः ५ बजे से लेकर रात्रि को १० बजे तक ५-६ घंटे के कार्यक्रम चलते हैं। प्रातः ७.०० से ८.०० तक दिगम्बर जैन बड़ा मंदिर में श्री लालचंदभाई के प्रवचनों के अतिरिक्त समस्त कार्यक्रम टोडमरल स्मारक भवन में ही होते हैं। दिनांक ८-८-७७ से श्री युगलकिशोरजी 'युगल', कोटा भी पधार रहे हैं।

दिनांक १ अगस्त से समस्त कार्यक्रम स्मारक भवन में ही होंगे। १ अगस्त से १५ अगस्त तक कार्यक्रम निम्नानुसार रहेगा :-

प्रात:	५.०० बजे से ५.४५ तक	प्रवचन	श्री पंडित प्रकाशचंदजी 'हितैषी', दिल्ली
प्रात:	७.३० बजे से ८.३० तक	प्रवचन	श्री पंडित लालचंदभाई मोदी, बम्बई [दिनांक १-८-७७ से ७-८-७७ तक]
			श्री युगलकिशोरजी 'युगल', कोटा [दिनांक ८-८-७७ से १५-८-७७ तक]
दोपहर	२.०० बजे से ३.०० तक	तत्त्वचर्चा	श्री पंडित लालचंदभाई मोदी, बम्बई
			श्री युगलकिशोरजी 'युगल', कोटा
			श्री पंडित प्रकाशचंदजी 'हितैषी', दिल्ली
दोपहर	३.०० बजे से ४.०० तक	कक्षा	श्री डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल, जयपुर
सायं	७.३० बजे से ७.४५ तक	जिनेन्द्र भक्ति	सामूहिक
सायं	७.४५ बजे से ८.३० तक	प्रवचन	श्री पंडित प्रकाशचंदजी 'हितैषी', दिल्ली
रात्रि	८.३० बजे से ९.३० तक	प्रवचन	श्री पंडित लालचंदभाई मोदी, बम्बई [दिनांक १-८-७७ से ७-८-७७ तक]
			श्री युगलकिशोरजी 'युगल', कोटा [दिनांक ८-८-७७ ये १५-८-७७ तक]

आवश्यक सूचना

श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय की स्थापना होने से निरंतर आध्यात्मिक विद्वानों के सत्समागम में रहने के लिये आनेवाले मुमुक्षु भाइयों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। यात्रार्थ या अन्य कारणों से आनेवाले बंधु भी बिना सूचना के ही ठहरने के लिये आ जाते हैं। स्थान की कमी निरंतर अनुभव की जा रही है। ऐसी स्थिति में आगंतुक सज्जनों एवं व्यवस्थापकों को कठिनाई होती है। अत: ३ दिन से अधिक रहकर लाभ लेनेवाले बंधुओं को ही स्मारक में निवास व भोजन (सशुल्क) की सुविधा दी जाएगी। यह सुविधा भी पूर्व सूचना आने पर ही दी जा सकेगी।

मंत्री, श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय,
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

पाठकों के पत्र

भीलवाड़ा (राज०) से हीरालालजी अजमेरा लिखते हैं –

श्री कानजीस्वामी इस भौतिक युग में लौह–पुरुष पैदा हुए हैं। श्वेताम्बर धर्म छोड़कर, दिगम्बर धर्म में आकर वीतराग मार्ग को भारी चमकाया। इसकी बड़ी प्रसन्नता है।

बीना (म०प्र०) से श्री बाबूलालजी जैन 'मधुर' लिखते हैं –

आत्मधर्म में स्वामीजी के आर्षग्रंथों पर प्रारंभ से ही धारावाहिक प्रवचनों का प्रकाशन होता आ रहा है। परंतु जब से आपके संपादन में आत्मधर्म निकलना प्रारंभ हुआ है, तब से संपादकीय में एक विषय पर पूर्णतया तर्कसंगत धारावाहिक लेख निकल रहे हैं। 'ज्ञान–गोष्ठी' में गहन विषय को छूते हुए प्रश्नोत्तर जिज्ञासुओं को संतोषप्रद होते जा रहे हैं।

भोगाँव (उ०प्र०) से सरिता जैन लिखती हैं –

आत्मधर्म पढ़कर हृदय गदगद हो जाता है। आत्मधर्म नाम के अनुसार आत्मा के स्वरूप का सच्चा ज्ञान करानेवाले वीतरागता के पोषक लेखों को पकढ़कर अत्यंत आत्मिक शांति का अनुभव होता है। नया अंक पाने की उत्कंठा लगी रहती है।

गंजबासौदा से श्री पंडित ज्ञानचंदजी 'स्वतंत्र' लिखते हैं –

'आत्मधर्म का एक वर्ष' शीर्षक का आपका लेख पढ़ा, पढ़कर आनंदाश्रु अंदर ही अंदर झर गये। सत्य ऐसा ही निर्भीक और आकर्षक होता है। जब से आपके पास आत्मधर्म आया है, तभी से यह शुक्ल पक्ष के द्वितीया के चंद्रमा की तरह वृद्धिंगत हो रहा है। इसकी अपनी रीति–नीति है, एक लक्ष्य है; उसी में बँधकर उसी का निर्वाह कर रहा है। वह अपने लक्ष्य की पूर्ति में सुमेरु की भाँति अचल है, प्रलय की आँधी या तूफान उसे कभी हिला नहीं सकते। मेरी हार्दिक इच्छा है कि आत्मधर्म को आपका संपादन जीवन की अंतिम सांस तक प्राप्त होता रहे।

इंदौर से श्री कमलकुमारजी जैन लिखते हैं –

पूज्य स्वामीजी से साक्षात्कार लेकर शीघ्र ही प्रकाशित करें। ऐसे प्रयत्नों से समाज में फैला भ्रम दूर होता है।

ग्वालियर (म०प्र०) से श्री चंपालालजी जैन दलाल लिखते हैं –

आपके द्वारा आत्मधर्म का संपादन होने से उसमें चार चाँद लग गये हैं। अब आत्मधर्म दिनोंदिन प्रगति कर रहा है तथा सभी को रुचिकर लगने लगा है।

गोरमी (म०प्र०) से श्री सुरेन्द्रकुमारजी जैन लिखते हैं –

आपके संपादकत्व में आत्मधर्म ने काफी प्रगति की है। इसमें एक पेज बच्चों के लिये दें तो अच्छा है।

मनासा (म०प्र०) से श्रीमती राजकुमारी गाँधी लिखती हैं –

आत्मधर्म मन में शांति को प्रदान करनेवाला निकेतन है। इसको पढ़कर मन को गहरी शांति प्राप्त होती है।

प्रबंध संपादक की कलम से

कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें :–

(१) जिन सदस्यों ने अपना ग्राहक नंबर लिखा था, उनकी रसीदें इस अंक के साथ भेजी जा रही हैं। सम्हाल लें।

(२) अधिकांश बंधुओं ने शुल्क भेजते समय अपना ग्राहक नंबर सही नहीं लिखा। जिससे हमें काफी कठिनाई उठानी पड़ी। अत: कृपया अपना सही ग्राहक नंबर लिखें।

(३) जो सज्जन वार्षिक ग्राहक से आजीवन ग्राहक बने हों वे अपना पूर्व का वार्षिक ग्राहक नंबर निरस्त करवाने हेतु पत्र द्वारा सूचना भेजें।

(४) जिन सज्जनों के पास डबल अंक आ रहे हों, वे अपने दोनों नंबर हमें लिखें ताकि उनका एक अंक बंद किया जा सके।

(५) पिछले माह जिन सज्जनों के पास डबल अंक पहुँच गये हों वे कृपया एक अंक वापस भेजने का कष्ट करें।

प्रवचनकार-प्रशिक्षण शिविर में भाग लेनेवालों को आवश्यक सूचना

दिनांक ३१-८-७७ से दिनांक १४-९-७७ तक सोनगढ़ में चलनेवाले प्रवचनकार-प्रशिक्षण शिविर में भाग लेने के लिये अनेक बंधुओं के पत्र आ रहे हैं। पर वे उसमें पूरा विवरण नहीं लिखते, जिससे यह पता ही नहीं चलता कि वे प्रवचनकार भी हैं या नहीं।

यह तो पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि इसमें मात्र प्रवचनकारों को ही प्रवेश दिया जायेगा। अतः प्रवचनकार बंधुओं के पधारने की सूचना देते वक्त मुमुक्षुमंडल या प्रवचनकार बंधु स्वयं निम्नलिखित विवरण सहित सूचना सोनगढ़ व जयपुर देवें, जिससे उनके लिये समुचित व्यवस्था की जा सके।

नाम उम्र

पता

क्या आप प्रतिदिन प्रवचन करते हैं?

यदि हाँ तो कहाँ?

क्या आप सोनगढ़ की ओर से पर्यूषण पर्व में या अन्य समय कहीं प्रवचन करने गये हैं? यदि हाँ तो कहाँ-कहाँ और कब-कब? **- संयोजक, प्रवचनकार-प्रशिक्षण शिविर**

बंडाबेलई (म०प्र०) - यहाँ दिनांक १६-७-७७ को श्री शांतिनाथ दिगम्बर जैन वीतराग-विज्ञान पाठमाला प्रारंभ की गई। इस नवीन पाठशाला में श्री नाथूरामजी जैन बी०कॉम० अध्यापन कार्य कर रहे हैं। **- सिं० बाबूलाल जैन, बंडाबेलई**

❀*❀* ❀*❀* ❀*❀*

सर्वज्ञ की पहचान धर्म का मूल है

अरे जीव! तू सर्वज्ञ की और ज्ञान की प्रतीति बिना धर्म क्या करेगा? राग में स्थित रहकर सर्वज्ञ की प्रतीति नहीं होती; राग से जुदा पड़कर, ज्ञानरूप होकर, सर्वज्ञ की प्रतीति होती है। इसप्रकार ज्ञानस्वभाव के लक्षपूर्वक सर्वज्ञ की पहचान करके उनके वचनानुसार धर्म की प्रवृत्ति होती है। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी के जो वचन हैं वे भी सर्वज्ञ अनुसार हैं, क्योंकि उसके हृदय में सर्वज्ञदेव विराज रहे हैं। जिसके हृदय में सर्वज्ञ न हो अर्थात् सर्वज्ञ को जो न मानता हो उसके धर्मवचन सच्चे नहीं होते। इसप्रकार सर्वज्ञ की पहचान धर्म का मूल है।

- पूज्य कानजीस्वामी

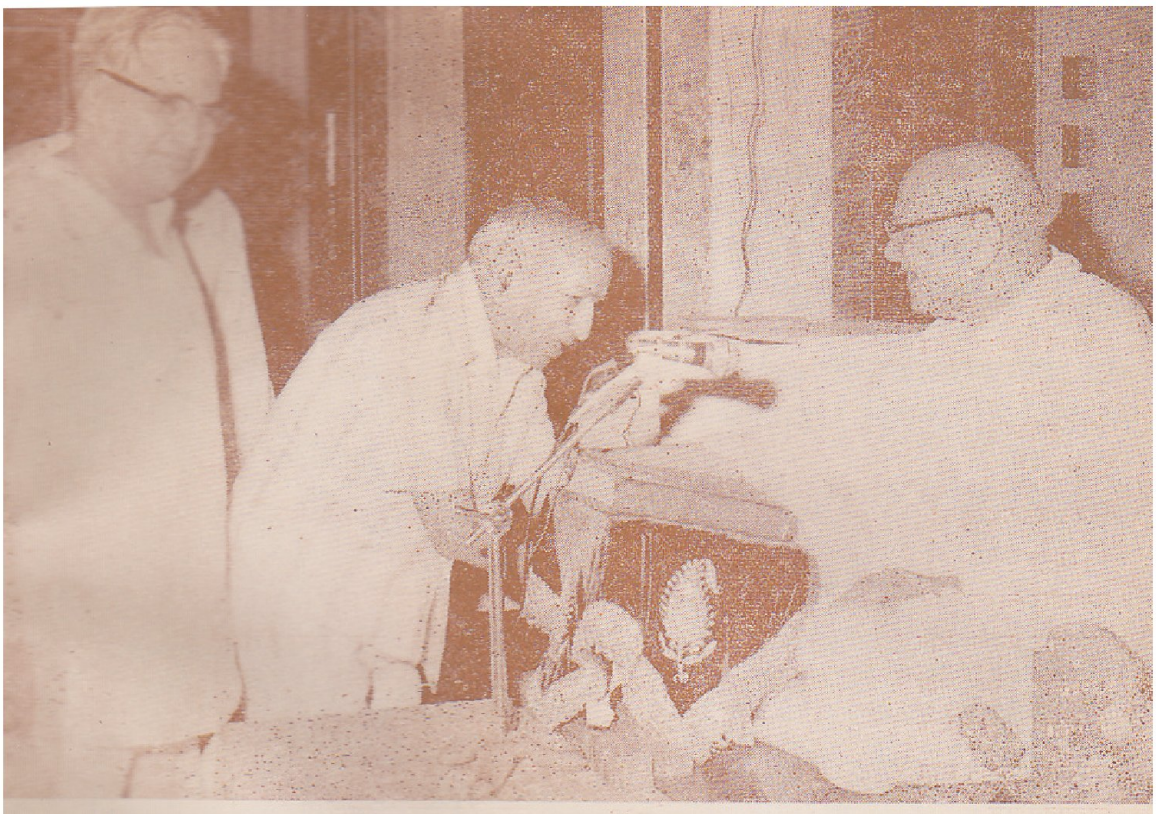

साहू श्री शान्तिप्रसादजी जैन पू० स्वामीजी का आशीर्वाद लेते हुए। साथ में श्री पन्नालालजी गंगवाल खड़े हैं।

महाविद्यालय के उद्घाटन समारोह में दायीं ओर से – संसद सदस्य श्री निर्मलचंद जैन, समारोह के अध्यक्ष श्री लालचंद मोदी, मुख्य अतिथि श्री भैरोंसिंह शेखावत – मुख्यमंत्री राजस्थान, उद्घाटनकर्त्ता प्रसिद्ध उद्योगपति साहू श्रेयांसप्रसाद जैन, राजस्थान के उद्योगमंत्री श्री त्रिलोकचंद जैन, श्री नेमीचंद पाटनी तथा डॉ० हुकमचंद भारिल्ल।

Reg. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन*

	रु० पै०		रु० पै०
मोक्षशास्त्र	१२-००	मोक्षमार्गप्रकाशक	प्रेस में
समयसार	१२-००	पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	१०-००
समयसार पद्यानुवाद	०-७०	तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	५-००
समयसार कलश टीका	६-००	" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)	२-००
प्रवचनसार	१२-००	मैं कौन हूँ?	१-००
पंचास्तिकाय	७-५०	पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य	०-६५
नियमसार	५-५०	कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य	०-३०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०	वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	३-००
अष्टपाहुड़	१०-००	अनेकांत और स्याद्वाद	०-३५
समयसार नाटक	७-५०	तीर्थंकर भगवान महावीर	०-४०
समयसार प्रवचन भाग १	प्रेस में	वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	०-२५
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में	सत्य की खोज (कथानक)	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००	अपने को पहचानिए	०-५०
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००	पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक और	
आत्मावलोकन	३-००	उसकी ग्यारह प्रतिमाएँ	०-३५
श्रावकधर्म प्रकाश	प्रेस में	अर्चना (पूजा संग्रह)	०-४०
द्रव्यसंग्रह	१-५०	मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)	०-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०	बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
प्रवचन परमागम	२-५०	बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
धर्म की क्रिया	२-००	बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग १	१-५०	वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग २	१-५०	वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग ३	१-५०	वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००	तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	प्रेस में
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०	तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
बालपोथी भाग १	०-२५	सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १	प्रेस में
बालपोथी भाग २	प्रेस में	युगपुरुष श्री कानजीस्वामी	१-००
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००	वीतराग-विज्ञान भाग ३	१-००
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००	(छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	
पंचमेरु नन्दीश्वर विधान पूजा	१-५०	सत्तास्वरूप	१-७०

* श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)
* पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४